निष्पक्ष पाठक

'वेद में इतिहास मानते थे, या नहीं ?'

विषय पर

आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ

रामलाल कपूर ट्रस्ट
बहालगढ़ (सोनीपत-हरयाणा)

रामलाल कपूर ट्रस्ट
के
उद्देश्य

प्राचीन वैदिक साहित्य का अन्वेषण, रक्षा तथा प्रचार, एवं भारतीय संस्कृति भारतीय शिक्षा, भारतीय विज्ञान और चिकित्सा द्वारा जनता की सेवा।

आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीति-पूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिये।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०—सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व-हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें॥

डॉ. अमित कुमार चौहान

ॐ ओ३म् ॐ

निरुक्तकार यास्क

'वेद में इतिहास मानते थे, या नहीं?'

विषय पर

आर्य-समाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ

प्रकाशक—

रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़

(सोनीपत-हरयाणा)

मुद्रक—

सुरेन्द्र कुमार कपूर

रामलाल कपूर ट्रस्ट प्रेस, बहालगढ़

द्वितीय बार

५०० प्रति

फाल्गुन सं० २०५० वि०

मार्च १९९४

मूल्य

२५-००

आर्यसमाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ

पण्डित-सभा की बैठकें

संख्या	बैठक	दिवस	समय	पृष्ठ
१.	पहली बैठक	तारीख १८-५-१९३१,	प्रातः ७॥ से	२-९
२.	दूसरी बैठक	,, १८-५-१९३१,	सायं ४॥ से	१०-१७
३.	तीसरी बैठक	,, १९-५-१९३१,	प्रातः ७॥ से	१७-३१
४.	चौथी बैठक	,, १९-५-१९३१,	सायं ४॥ से	३२-४०
५.	पांचवीं बैठक	,, २०-५-१९३१,	प्रातः ७॥ से	४०-५३
६.	छठी बैठक	,, २०-५-१९३१,	सायं ४॥ से	५३-६२
७.	सातवीं बैठक	,, २१-५-१९३१,	प्रातः ७॥ से	६२-७४
८.	आठवीं बैठक	,, २१-५-१९३१,	सायं ४॥ से	७४-८२
९.	नवमी बैठक	,, २२-५-१९३१,	प्रातः ७ से	८३-९८

* ओ३म् *

निरुक्तकार यास्क

'वेद में इतिहास मानते थे, या नहीं ?'

आर्य-समाज के दिग्गज विद्वानों का शास्त्रार्थ

प्रस्तावना

आज से लगभग ४२ वर्ष पूर्व श्री महात्मा हंसराज जी की अध्यक्षता में आर्य-समाज के कतिपय दिग्गज वैदिक विद्वानों के मध्य यह शास्त्रार्थ १८मई से २२ मई तक सन् १९३१ में लाहोर में श्री प्रि० साईदास जी की कोठी पर हुआ था। इस शास्त्रार्थ को उसी समय लिपिबद्ध किया गया था। इन में श्री लाला खुशहाल चन्द जी (वर्तमान में श्री पूज्य आनन्द स्वामी जी), श्री पं वाचस्पति एम० ए० तथा पं० रघुनन्दन शास्त्री आर्य प्रादेशिक सभा से सम्बद्ध व्यक्ति थे। तथा ब्र० याज्ञवल्क्य और ब्र० यशःपाल श्री पं० ब्रह्मदत जी जिज्ञासु के विरजानन्द आश्रम के छात्र थे।

यह शास्त्रचर्चा १८, १९, २१ मई को सायं और प्रातः दोनों समय और २०, २२ मई को प्रातःकाल हुई थी। इन अधिवेशनों की कार्यवाही जिन व्यक्तियों ने लिखी, उस का विवरण इस प्रकार है—

तिथि वा समय	नाम लेखक
१८ मई १९३१ प्रातः	१. ला० खुशहालचन्द २. ब्र० याज्ञवल्क्य ३. ब्र० यशःपाल
१८ मई १९३१ सायं १९ मई १९३१ प्रातः	१. पं० रघुनन्दन २. ब्र० याज्ञवल्क्य ३. ब्र० यशःपाल
१९ मई १९३१ सायं २० मई १९३१ प्रातः	१. पं० रघुनन्दन २. पं० वाचस्पति ३. ब्र० याज्ञवल्क्य ४. ब्र० यशःपाल
२१ मई १९३१ प्रातः तथा सायं २२ मई १९३१ प्रातः	१. पं० वाचस्पति २. ब्र० याज्ञवलक्य ३. ब्र० यशःपाल

इन लेखकों के अनुसार लिखी गई सामग्री के आधार पर आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के साहित्य-विभाग के अध्यक्ष पं० वाचस्पति जी एम० ए० ने एक प्रामाणिक कापी तैयार की। इससे दो कापियां तैयार की गई। एक आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा के कार्यालय में रखी गई, दूसरी श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के पास रही। स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु इस कापी को पाकिस्तान बनने पर लाहौर से अपने साथ ले आये।

यह शास्त्रार्थ विद्वानों के मध्य में शास्त्र-तत्त्व-निर्णय के लिये हुआ था, सार्वजनिक नहीं था। अतः इसे उस समय प्रकाशित नहीं किया गया। इस शास्त्रचर्चा में प्रमुखरूप से भाग लेनेवाले प्रायः सभी विद्वान् इस समय यशःकायपरिनिष्ठ (=दिवंगत) हो गये हैं। यतः यह शास्त्रचर्चा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी, अतः हम इसे सुरक्षित करने की दृष्टि से प्रकाशित कर रहे हैं। स्व० श्री पं० ब्रह्मदत्त जी के संग्रह में हमें जो कापी मिली है, उसे हम सर्वथा उसी रूप में छाप रहे हैं। लेखक-प्रमादजन्य साधारण अशुद्धियां तो ठीक कर दी हैं, परन्तु कहीं पर कुछ भी घटाया-बढ़ाया नहीं है।

यतः आर्यसमाज के १०० वर्ष के इतिहास की यह एक महत्त्वपूर्ण घटना है, अतः हम आर्यसमाज स्थापना शताब्दी के उपलक्ष्य में इसे पुस्तक रूप में प्रकाशित कर रहे हैं। आशा है स्वाध्याय-प्रेमी आर्यजनों के लिये यह अवश्य उपयोगी होगा।

—युधिष्ठिर मीमांसक

पण्डित-सभा की कार्यवाही

पहली बैठक ता० १८-५-३१ प्रातः ७॥ से १०॥ बजे तक

प्रधान—श्री हंसराज जी

प्रारम्भ में प्रधान जी ने बाहर से आये हुए सब सज्जनों का धन्यवाद किया, और मन्त्री को पत्रव्यवहार पढ़ने के लिये कहा। मन्त्री ने उठकर पत्रव्यवहार पढ़ कर सुनाया।

प्रधान का भाषण—इस विषय में ये-ये पक्ष हो सकते हैं। १. निरुक्तकार वेद में इतिहास मानते हैं। २. निरुक्तकार इतिहासपक्ष को देते हैं, पर मानते नहीं। ३. जिसको निरुक्तकार इतिहास कहते हैं, वह आमतौर पर जिसे इतिहास समझा जाता है, वह नहीं है, किन्तु नित्य इतिहास है। क्योंकि आर्यसमाज वेदों को स्वतःप्रमाण मानता है, और निरुक्तादि ग्रन्थों को परतः प्रमाण मानता है, इसलिये आर्यसमाज की पोजीशन में फर्क नहीं पड़ता। निरुक्तादि ग्रन्थों में इतिहास होने पर भी आर्यसमाज वेदों में इतिहास नहीं मानता। आर्यसमाजियों का विश्वास है कि वेद सृष्टि के आरम्भ में प्रकट हुए। ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त है कि वेद के शब्द अर्थ और ज्ञान नित्य है। वही परम्परा से चला आता है। मैं आप सब सज्जनों से निवेदन करता हूं कि यह सब कारवाही प्रेम और मुहब्बत से होनी चाहिये।

इसके बाद परस्पर विचार द्वारा निश्चय हुआ कि इस विचार का समय प्रातः ७ से १० और सायं ४½ से ६½ बजे का हो।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—विवाद शुरु होने से पहिले इस बात का निश्चय होना चाहिए कि इस विचार का स्वरूप क्या होगा, वाद जल्प या वितण्डा? विवाद करनेवाले का पक्ष निश्चित होना

चाहिए। हम महर्षि दयानन्द जी के सिद्धान्तों को मानते हैं, क्योंकि वे हमें यथार्थ प्रतीत होते हैं। अब दूसरे पक्षवालों को चाहिए कि वह अपना पक्ष पेश करें, और बतलायें कि—

१. क्या वादी वेद को अपौरुषेय मानता है ? यदि पौरुषेय मानता है, तो मन्त्र कब से कब बनते रहे ? आगे भी कहां तक बनने की सम्भावना है ?

२. उसके विचार में वेदार्थ आज तक किसी ने समझा भी है या नहीं ? यदि समझा है तो किस-किस ने ?

३. उसके विचार में यथार्थ वेदार्थ की कसौटी क्या है ?

४. वादी के मत में निरुक्तकार के अभिप्राय को किसी ने समझा भी है या नहीं ? यदि समझा है तो किस-किस ने ?

५. क्या वादी निरुक्त के इन ६ छः स्थलों में ही इतिहास मानता है ? या उसका मत यह है कि निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मेरा विश्वास है कि स्वामी जी के सब सिद्धान्त सत्य हैं। यह जरूरी नहीं कि मैं सब बातों को सिद्ध भी कर सकूं।

श्री पं० गुरुदत्त जी—जो पत्र अब सुनाये गये हैं, वे संदेह से परे हैं। उनसे तो यह जाहिर होता है कि पं० विश्वबन्धु जी [ने] सिर्फ विचार के लिए ये स्थल रखे हैं। इन पर विचार होना चाहिए।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—पक्ष कोई नहीं, पक्ष स्वामी दयानन्द का है। और उसी पर विचार होना है।

श्री पं० राजाराम जी—आपने पत्रव्यवहार सब सुन लिया। यह विचार इसलिये उठा है कि लोग प्रश्न करते हैं। समाज का काम है कि स्वामी जी के सिद्धान्त के साथ जो नहीं मिलते उन पर विचार करे। और जो सच्चाई उससे जाहिर हो, या जिससे समाज की पुष्टि होती हो, उसके अनुसार निर्णय किया जाय। एक आदमी एक विषय में एक उत्तर देता है, दूसरा और उत्तर देता है। एक कहता है कि यास्क वेद में इतिहास मानता है, दूसरा कहता है कि वह नहीं मानता, इससे समाज को कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता। जो विवादास्पद विषय हैं, उनको बेपरवाही में नहीं छोड़ना चाहिए। आर्यसमाज का कर्त्तव्य है कि वह विचार करे। प्रधान जी ने कहा था कि सम्मिलित शक्ति से निर्णय हो सकता है। इसलिये पं० विश्वबन्धु जी को यह ड्यूटी दी गई थी कि विचार लिखकर भेज देवें।

वे विचार हमारी तरफ से इसलिए पेश किये गये हैं कि वे विचारणीय हैं। मैंने निरुक्तभाष्य लिखते हुए चेष्टा की कि ये विषय आर्यसमाज के सिद्धान्त के साथ मिल जायें, परन्तु सफलता नहीं हुई। मैंने कई पण्डितों से भी पत्रव्यवहार किया, किन्तु किसी ने कोई सहायता नहीं की। इसलिये मैंने अक्षरशः अर्थ कर दिया। फिलहाल ६ स्थल पेश किये गये हैं, जिनसे जाहिर होता है कि यास्कचार्य वेद में इतिहास मानता है। मेरे हृदय में भी सन्देह होते हैं, और भी जो पढ़ेगा उसे भी

सन्देह होगा। इसलिए पक्ष बनाकर नहीं, किन्तु विचार को सम्मुख रखकर समाधान होना चाहिए। ऐसा न हो कि जिससे आगे कोई आदमी इन बातों को रखने का साहस ही न करे। हृदय विशाल होना चाहिए, ताकि खुले रूप से विचार हो सके। हम सब निर्णय करने के लिये यहां एकत्रित हुए हैं। जो मुश्किल व सन्देह सामने है, उन्हें हम सब मिलकर हल करें। मैं भी बल लगाऊंगा कि यह सब हल हो जाय, और समाज के सिद्धान्त के अनुकूल हल हो जाय। इसलिए हमारा कोई पक्ष नहीं। सिर्फ समाज के सामने कठिनाई देखकर उसे पेश किया है। मैं विश्वास से कहता हूं कि अगर यह सिद्ध हो जाय कि यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता, तो मेरा हृदय खिल जायगा। और अगर मुझे [इतिहास] पक्ष वाला भी दूसरे समझें, अगर मेरा पक्ष गिर जाये और मैं हार जाऊं, तो मुझे उसमें ज्यादा खुशी होगी, क्योंकि दरअसल वह हार फतह होगी, जिससे समाज का सिद्धान्त सिद्ध होवे।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—बात बहुत साफ हो गई है, परन्तु Declaration of faitn (मन्तव्य की घोषणा) होना जरूरी है। मैं स्वामी जी के सिद्धान्त को मानता हूं। दूसरे भी ऐसा एलान कर दें।

महात्मा जी—पं० विश्वबन्धु जी ने कहा था कि सिद्धान्तों के निर्णय के बिना शान्ति नहीं हो सकती। हम तो सब जगह कहते हैं। दूसरों का काम उत्तर देने का है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—सिद्धान्तों के मतभेद के विषय में अवश्य निर्णय होना चाहिए। मैंने हरगिज नहीं कहा था कि मैं हर जगह कहता फिरता हूं, किन्तु रावलपिण्डी में मनसा-परिक्रमा पर कहा था।

महात्माजी—प्रश्न आपकी तरफ से है, या नहीं ?

श्री पं० विश्वबन्धु जी—जो सन्देह मैंने और पं० राजाराम जी ने पेश किये हैं, वह सब की तरफ से हैं। जिसमें मैं भी शामिल हूं, पं० भगवद्दत्त जी भी शामिल हैं।

महात्मा जी—दो बातें हैं, अगर तो यह पोजीशन हो कि समाज के सिद्धान्त दुरुस्त नहीं, तब और तरह से [विचार] होगा। अगर यह हो कि सन्देह आ गया है, तो उस पर विचार किया जाय। अगर विश्वबन्धु जी समाज के सिद्धान्त को मानते हैं, सिर्फ सन्देह दूर कराना है, तब तो और बात है। यदि वेद के अन्दर इतिहास वे मानते हैं, और वे समाज के सिद्धान्त को बदलना चाहते हैं, तब दूसरे तरीके से विचार होगा।

श्री पं० राजाराम जी—मुझे यह प्रतीत है कि जो बात हमसे पूछी गई उसका जवाब दे दिया। हमने निरुक्त के ६ स्थल बतला दिये। स्थान निर्दिष्ट हो चुका है। अब पहिले इन स्थलों पर विचार होना चाहिए, क्योंकि वेद के साथ इसका भी सम्बन्ध है। इसके निर्णय के साथ ही निर्णय हो जायगा कि वेद में इतिहास है कि नहीं। यहां यह पूछना कि समाज के सिद्धान्तों को मानते हैं या नहीं, इससे तो यह अच्छा है कि हम सब समाजों से सभासदी का सर्टिफिकेट ले आयें। यह तो कह देने की बात है कि स्वामी जी का अक्षर-अक्षर ठीक है, ऐसा मैं मानता हूं। यह कह देने

वाले बहुत से मनुष्य होंगें, पर जब निर्णय करना होगा, तब केवल इसी से काम चलना कठिन होता है। जब ये स्थल निर्देश कर दिये हैं कि इनसे प्रतीत होता है कि यास्काचार्य वेद में इतिहास मानते हैं। मैं निरुक्त को सर्वथा प्रमाण नहीं मानता, उसी रूप में मानता हूं जैसा कि स्वामी जी ने माना है। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि यह विषय सिद्ध हो जाय कि यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता। अब उन स्थलों पर विचार होना चाहिये।

महात्मा जी—इस वक्त सिर्फ वेद और इतिहास का विषय है। इसलिये इसके मुतआलिक पूछा गया है। स्वामी जी के कुल सिद्धान्तों के मुतआलिक बात नहीं है। वेद-मन्त्रों का अर्थ तथा निरुक्त दोनों साथ-साथ चलना चाहिये। इसमें दो बातें हो सकती हैं कि आप कहें कि मैं तो वेद में इतिहास नहीं मानता, पर ये दिक्कतें आती हैं, उन पर विचार होना चाहिये। या यह कहिये कि मेरा विश्वास बदल गया है। मुझे संशय है कि वेद में इतिहास है। यदि यह बात साफ शब्दों में प्रकट कर दी जाय कि हम वेदों में इतिहास मानते हैं या नहीं मानते, तब यह विचार आगे अच्छी तरह चल सकता है।

श्री पं० बुद्धदेव जी—पक्ष की स्थापना तो अवश्य होनी चाहिये। हम तो चाहते हैं कि आप उत्तर पक्ष में रहें। क्योंकि आपका स्वाध्याय बहुत है।

श्री पं० राजाराम जी–पक्ष मेरी तरफ से नहीं, स्थापन करने के लिये। सिर्फ विचार के लिये मैं इस पक्ष को स्वीकार करता हूं कि यास्क वेद में इतिहास मानता है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—ये प्रश्न आदि से चले आ रहे हैं। हमारा विश्वास है कि वेद में इतिहास नहीं। हम पहिले इस सिद्धान्त का निश्चय कर देवें कि वेद में इतिहास नहीं, फिर निरुक्त पर विचार आरम्भ हो जायगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी पं० राजाराम जी ने जो कुछ कहा है, मैं उसका अक्षरशः अनुमोदन करता हूं। महात्मा जी ने नहीं कहा था कि 'वेद में इतिहास है या नहीं' इस बात का निर्णय होगा। हमने तो निरुक्त महात्मा जी के कहने से नियत किया था।

महात्मा जी–असली सवाल यह है कि 'वेद में इतिहास है वा नहीं ?' आपके दिल में यदि यह विचार हो कि वेद में इतिहास है, तो पूर्वपक्ष लेकर विचार करें। फैसला यह हुआ था कि इस बात पर विचार हो कि 'वेद में इतिहास है वा नहीं ? और निरुक्तकार वेद में इतिहास मानता है या नहीं ?' तब उस अवस्था में यह प्रश्न सादा हो जाता है। यास्क वेदमन्त्रों के अर्थ नैरुक्त रीति से करता है। मैं सिर्फ इतना कहता हूं कि आप वेदार्थ करके बतावें, और उस पर निर्णय हो जावें।

श्री पं० रामगोपाल जी–पहले कोई Fundamental (मौलिक) बात निश्चित हो जानी चाहिये कि आप या हमने ऋषि-मुनियों के आधार पर वेद के अर्थ करने हैं, या अपनी मर्जी से। ऋषियों का आधार वेदार्थ करने में सहायक है। हमने ग्रन्थों के आधार पर फैसला करना है, एक कसौटी निश्चित करनी चाहिये।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी–स्पष्टरूप से पहिले यह बात होनी चाहिये कि वादी यह बतलायें कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्तों को मानते हैं या नहीं ? जो जैसा मानता है वह वैसा कह देवे। दम्भ से अलग होकर चाहे मैं होऊं या कोई और हो, उसे साफ कह देना चाहिये। पं० राजाराम जी वेद में इतिहास मानते हैं, और उन्होंने बी० ए० के संस्कृत के विद्यार्थियों को पढ़ाते हुए कहा कि वेद में इतिहास है, और निरुक्तकार वेद में इतिहास मानते हैं। और इस विषय में १३ विद्यार्थियों के हस्ताक्षरों सहित महात्मा जी के पास पत्र पहुंचा, और मेरे पास भी पत्र पहुंच चुका है। और पं० विश्वबन्धु जी ने 'आर्य गजट' के अपने लेख में वेदविषय में बतलाया कि वेदार्थ शैली का निश्चय होना चाहिये।

स्वामी जी की शैली विचारणीय है, परन्तु स्वामी जी की शैली को पौराणिक विद्वानों ने भी माना है। हम ऋषि दयानन्द के सब सिद्धान्तों को मानते हैं, इसलिये नहीं कि उन्हें स्वामी दयानन्द ने लिखा है, बल्कि इसलिये कि वह यथार्थ हैं। अत: कोई बात हमारी समझ में न आवे, तो उसको एकदम गलत कह कर नहीं छोड़ देना चाहिये, किन्तु **'व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्'** इस नियम के अनुसार विचार करना चाहिये कि प्रेस आदि की असावधानता से भी कुछ अशुद्धियां हो सकती हैं, जो कि स्वामी जी के नाम नहीं मढ़ी जा सकतीं, और हम उसके जिम्मेवार नहीं। वे पांच बातें जिनका सङ्केत पूर्व कर चुका हूं, उनका निर्णय हो जाना चाहिये।

श्री पं० राजाराम जी–जिन दिनों मांस का झगड़ा उठा था, उन दिनों एक आदमी ने मुझ पर सवाल किया कि क्या मांस खाने से विषयचेष्टा बढ़ जाती है ? मैंने कहा कि मुझे इस बात का तजुर्बा नहीं। उसने पूछा कि क्या आप समाज की वेदी पर भी यही कहेगें ? मैंने कहा हां। दूसरे दिन मेरे पास दो तीन आदमी आये, और पूछने लगे कि आप मांस खाने से विषयचेष्टा बढ़ना नहीं मानते ? मैं हैरान रह गया। इस तरह यह बात है। मैंने बिल्कुल नहीं कहा कि वेद में इतिहास है। पण्डित जी को किसी ने धोका दिया, और वह स्वयं भी धोके में आना चाहते थे।

महात्मा जी—लाला खुशहालचन्द जी ने पत्र पढ़कर सुनाया कि निरुक्त के इन ६ स्थलों पर विचार होगा। और यहां पर आये वेदमन्त्रों के वेदार्थ पर विचार होगा। इन सूक्तों के अर्थ करने में मुख़ालिफों को जवाब देने में दिक्कत होती है, इस दिक्कत को दूर करना है। अब एक पक्ष यह सिद्ध करेगा कि इन मन्त्रों में इतिहास है, और दूसरा पक्ष यह सिद्ध करेगा कि इनमें इतिहास नहीं। मन्त्रों के अर्थ करने के लिये सूक्तों को लेकर अर्थ पर विचार करना चाहिये। अच्छा तो यही है कि आप सब मिलकर यह विचार करें कि उन स्थलों में इतिहास नहीं है। और अगर बहस के दर्मियान में कोई इस बात को ले कि वेद में इतिहास है, तो फिर उसी सूरत से बहस हो जायेगी।

श्री पं० विश्वबन्धु जी— असली लक्ष्य वेदार्थ जानना है, जैसा कि चिट्ठियों में लिखा गया है। परन्तु जिस तरह यह बात चली है, उससे ६ स्थलों को सामने रखा गया है। बाकी वेदार्थ किस प्रकार हो, उसके लिये तो बहुत कुछ चाहिये। स्वामी जी ने षडङ्ग के आधार पर वेदार्थ करना माना है। आप पहिले नम्बर एक ले लें। निरुक्तकार के अर्थ पढ़ लें, जब उसके मुतालिक एक कोटि में शामिल हो जायें, तो फिर मन्त्रों का अर्थ समाज के सिद्धान्त के अनुकूल देख लिया जावे। आखिर वेद तो निरुक्त के सहारे खुलेगा।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—सिद्धान्त निश्चित है कि वेद में इतिहास नहीं। शक मुझे भी हो सकता है आपको भी। उसका जवाब आज मिल जाय कल मिल जाय, उसका जवाब तलाश करूंगा पहिले यह पोजिशन साफ हो कि किस Idea से Start करते हैं।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—इस Idea को लेकर Start करते हैं कि वेद में इतिहास साबित न हो,वेदार्थ जाना जाय। स्वामी दयानन्द जी ने जो कुछ लिखा है, वह सब ठीक है,तो फिर पं० भगवद्दत्त जी क्यों कहते हैं कि उन्हें शक है ? विश्वबन्धु यह दोनों वाक्य एक समय नहीं कह सकता।

महात्मा जी—पं० विश्वबन्धु जी ने कहा है कि उनके दिल में ख्वाहिश है कि वेद में इतिहास सिद्ध न हो, यह मुबारिक है। वेदार्थ के लिये अङ्ग जरूरी हैं, लेकिन इस मौके पर वेदमन्त्र आपके सामने होगें, आप व्याकरण ज्योतिष आदि की बातें पेश कर सकेगें। इसमें मुझे आपत्ति मालूम नहीं होती। मन्त्र के साथ पूरे सूक्त को ले लें, उस पर विचार हो, साथ [में] निरुक्त का वह स्थल भी आ जायगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—यह बात चिट्ठियों के बखिलाफ हो जायगी। निरुक्त वेद में इतिहास मानता है। वेद में इतिहास है या नहीं, इस निर्णय में झगड़ा पड़ेगा। शब्द का अर्थ निर्णय करने के लिये निरुक्त आ पहुंचेगा। वेद का अर्थ किस तरह से होना चाहिये,यह निश्चित हो जाना चाहिये।

श्री पं०राजाराम जी—नोंक झोक नहीं होना चाहिए। मैंने ६ स्थल तो निर्देश किये हुए हैं। उन पर विचार करना है। यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है या नहीं, इस पर विचार करना है। जैसे पहला स्थल ६।२२ में [बीच में महात्मा जी उनको रोककर बोलते हैं—इस बात का निर्णय हो जाने के बाद आप प्रारम्भ कीजयेगा कि वेदमन्त्र तथा सूक्त तथा निरुक्त साथ-साथ चलेगें।]

श्री पं० रामगोपाल जी—दर असल कोई फर्क नजर नहीं आता। पण्डित जी एक टुकड़े को लेना चाहते हैं, लेकिन महज टुकड़े से कुछ नहीं बनता। पहिले मन्त्र देखा जायगा, सूक्त देखा जायगा, देवता देखा जायगा, तथा स्वर देखा जायेगा, तब अर्थ हो सकता है। यह टुकड़ा है—**स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु**' केवल इतने टुकड़े से तो अर्थ नहीं हो सकता। इसके लिये सूक्त तथा देवता देखना होगा।

श्री महता रामचन्द्र जी—मैंने यह समझा था,और मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आर्यसमाजी विद्वान् भी जिस तरह से मिर्जइ लोग सभायें करके कुरान पर किये आक्षेपों का उत्तर देते हैं, उसी तरह यह भी करना चाहते हैं, कि जिससे आर्यसमाज की पताका ऊंची हो। निरुक्त में कई जगह **'इत्यैतिहासिकाः'** **'इति नैरुक्ताः'**कहकर अर्थ प्रदर्शित किया है। निरुक्त के पहिले एक ऐसा भी दल था, जो निरुक्त में इतिहास मानता था। यह कोई नहीं कह सकता कि जहां उन्होंने**'इति नैरुक्ताः'**ऐसा नहीं कहा वहां और कोई भी अर्थ नहीं हो सकता। मैं यह मानता हूं कि उसका यौगिक अर्थ हो सकता है। यदि यह निर्णय हो जाय तो अच्छा है। मैं तो यहां इसलिये आया हूं कि यहां निर्णय होगा और हम डायरी में लिखकर ले जायेगें। तथा जब प्रतिपक्षी प्रश्न करेगें, तब हम उनकी सङ्गति लगा

देगें। मैंने सायण का वेदभाष्य पढ़ा है। सायण कहता है कि मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, पर उसने तीन प्रकार के अर्थ इतने मन्त्रों के किये हैं कि मैं उन्हें अङ्गुलियों पर गिनकर बता सकता हूं। इससे कोई यह नहीं कह सकता कि अन्य मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ नहीं हो सकते। जैसे निरुक्त में कहा है कि 'कुरङ्गो राजा बभूव'। कुरङ्ग राजा हुआ था या नहीं, यहां नित्य इतिहास है या नहीं, यह निर्णय होना चाहिए। व्याकरण से इसका अर्थ करना चाहिए।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—हम यहां आग्रह करने नहीं आये हैं। लीजिये, मैं अब नैरुक्तों का सिद्धान्त स्थापित करता हूं। हम अपना कपोलकल्पित सिद्धान्त नहीं रखते। स्कन्द स्वामी अपनी निरुक्त की टीका २।१२ में लिखता है—

'एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। ·· ··औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्॥'

यह स्कन्द स्वामी ६३० ई० में हुआ है। दूसरा प्रमाण—वररुचि अर्थात् कात्यायन मुनि भी अपने 'निरुक्तसमुच्चय' (४।१४) में इसी प्रकार लिखता है—**"एवं नैरुक्तपक्षे योजना, औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्वविरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः'**।

तथा दुर्गाचार्य, जिसने निरुक्त के समझने में बड़ी सरलता कर दी है, वह एक इतिहासपक्ष की व्याख्या करता हुआ लिखता है—

"यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविको वा अर्थ आख्यायते दिष्टच् दितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः' ॥ १०।२६॥

अर्थात् नित्य इतिहास है – आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीन तरह का नित्य इतिहास है। निरुक्त के ये तीन बड़े आचार्य, जिन्होंने निरुक्त पर अपने जीवन व्यतीत कर दिये, इतिहास के मुतआलिक फतवा देते हैं। अब आप यह मान लीजिये कि निरुक्तकार इतिहास नहीं मानते। हमें अब सन्देह है, आगे मैं इसका उत्तर दूंगा।

श्री पण्डित बुद्धदेव जी—प्रथम आप इतिहास के स्वरूप का निश्चय कीजिये। बतलाइये कि निरुक्तकार वेद में किस तरह इतिहास मानते हैं? दुर्गाचार्य्य लिखता है कि **'परकृत्यर्थवाद'** रूपेण इतिहास होता है। न्यायभाष्यकार परकृति और इतिहास को अलग मानता है। पहिले यह साबित करना चाहिए कि इतिहास क्या होता है **'अनिर्दिष्टप्रवक्तृकं प्रवादपारम्पर्यमैतिह्यम्'** जिसका कोई वक्ता न हो, वह इतिहास कहलाता है। यथा **'देवा होचुः।'** वेद का कर्त्ता ईश्वर है। इसलिये उसमें इतिहास नहीं हो सकता। लोग उसे परकृति मानते हैं। [**श्री पं० विश्वबन्धु जी** बात काटकर—परकृति भी बतला दीजिये क्या होती है ?] **'अन्यकर्तृकस्य व्याहतस्य विधेर्वादः परकृतिः'** निरुक्त भाष्यकार दुर्ग लिखते हैं **"तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्"** अर्थात् अर्थ बताने के लिये वह इतिहास बनाये गये हैं। आपको चाहिये कि आप किसी प्रामाणिक ग्रन्थ से यह साबित करें कि निरुक्त के इतिहास का स्वरूप क्या है ?

—[**क्रमशः**]

श्री पं० राजाराम जी—शास्त्रार्थ लिखित होना चाहिये। मैं प्रश्न लिखकर दे दूं तथा सुना दूं। इसी [तरह] वह लोग लिखित उत्तर दें और सुना दें, जिससे कोई प्रकरण-विरुद्ध न जा सके। जैसे अभी दर्शनों के विषय में कहा गया था कि वेद में नित्य और अनित्य पक्ष दोनों होते हैं। मीमांसा में नित्य पक्ष के कई भेद होते हैं। दर्शनों का मर्म समझे बिना कोई यह नहीं कह सकता।

श्री पं० बुद्धदेव जी—लिख कर शास्त्रार्थ करने का सभा ने निश्चय नहीं किया। मुझ पर हमला किया गया है कि मैं दर्शनों के मर्म को नहीं समझता। स्कन्द कोई मीमांसक नहीं है।

श्री पं० राजाराम जी—(बात काट कर) मेरा मतलब यह नहीं था। मेरा मतलब था कि यह अलग विचार का विषय है। आप निरुक्त के इतिहास का स्वरूप प्रामाणिक ग्रन्थ से बतलावें।

महात्मा जी—लिखकर जवाब होने में कोई हानि नहीं, अच्छा है। लिखित कागज पत्र प्रादेशिक सभा के दफ्तर में पड़े रहेंगे। परन्तु एक बात है कि अन्य लोग जो यहां दूर-दूर से पधारे हैं, खाली रहेंगे, उकता जावेंगे। सिर्फ लिखनेवाले ही काम करेंगे। इसलिये विचार जबानी ही होना चाहिये। पहिले सूक्त को लेकर यह सिद्ध करना चाहिये कि इसमें इतिहास है वा नहीं ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—पहिले यह बात स्वीकार कर लीजिये कि निरुक्तकर्ता यास्क तथा टीकाकार इतिहास नहीं मानते, परन्तु हमें सन्देह है। फिर विचार चलना चाहिये।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—आपके सामने मूल वेद ब्राह्मण आरण्यक स्वयं निरुक्त निरुक्त-समुच्चय निरुक्त के टीकाकार दुर्ग और स्कन्द स्वामी शबर स्वामी कुमारिल इत्यादि लगभग २० भाष्यकारों के प्रमाण पेश करता हूं कि वेद में इतिहास नहीं। आप यह स्पष्ट कर दें कि आप इन्हें प्रमाण मानते हैं या नहीं ? आपकी पोजिशन क्या है ?

श्री पं० राजाराम जी—मुझे किसी तरह का एतराज नहीं। आप मुझे यह स्थल '**कुरुश्रवणो राजा बभूव**' [निरु० ६।२२] किसी टीका को लेकर समझा दें। आप किसी टीका को प्रमाण मान लीजिये। यह नहीं कि जब हम प्रमाण दें तो इन्कार कर दें। यदि आप प्रमाण दें तो मैं मान लूं, यह कैसे हो ? आप किसी भी टीका को प्रमाण पूर्णतया बना लीजिये।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—टीका को प्रमाण मानना आवश्यक नहीं। निरुक्त पर भी यही बात लागू होगी। निरुक्त को भी पूर्णतया प्रमाण मानिये। जब आप भी यह स्वीकार करते हैं कि निरुक्तकार ने बहुत से स्थलों पर नैरुक्त पक्ष से अर्थ करते हुए नहीं माना, तो आपको वह भी प्रमाण मानने पड़ेंगे। इसलिये जो पक्ष सर्वशास्त्रानुकूल और प्राचीन आचार्यों के अनुकूल होगा, वह माना जायेगा।

श्री पं० राजाराम जी—मैं निरुक्त को सर्वथा प्रमाण नहीं मानता। मैं वेद को परम प्रमाण मानता हूं। चाहता हूं कि वेद से इतिहास न निकले। पहिले यह सिद्ध हो जाना चाहिए कि निरुक्तकार इतिहास मानता है वा नहीं ? मैं मूल वेद से अर्थ करने को तैयार हूं।

महात्मा जी—निरुक्त के पहिले स्थल पर विचार होना चाहिए। जो कुछ अब हुआ है, उस पर विचार करके शाम को ४॥ बजे आ जायें।

[दूसरी बैठक ता० १८-५-३१ सायं ४॥ बजे से]

श्री पं० राजाराम जी—निरुक्त के जो ६ स्थल नियत किये गये थे, उनमें से पहिले स्थल में देखिये। यह निगम है—**'स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु'** [ऋक्० ८।४।१९]। 'दिविष्टिषु' शब्द के निर्वचन के प्रसङ्ग में यास्क ने यह निगम दिया है। आगे यास्क लिखता है—**'कुरुङ्गो राजा बभूव'** [निरु० ६।२२] कुरुङ्ग नाम का राजा हुआ था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि यास्क वेद में इतिहास मानता है। तथा आगे 'कुरुङ्ग' की व्युत्पत्ति करके साफ कर देता है—**'कुरु-गमनाद्वा, कुलगमनाद्वा'** [निरु० ६।२२]। कुरुओं में वह गया था पुत्र होकर या जीतने के लिये।

श्री प्रधान जी—आप सूक्त की सङ्गति लगाइये, सारे सूक्त का अर्थ कीजिये।

श्री पं० राजाराम जी—हां, मैं मन्त्र की भाषा कर देता हूं, किन्तु सूक्त की व्याख्या करना मेरा कर्तव्य नहीं।

श्री प्रधान जी—आपको कम से कम उन तीन मन्त्रों का अर्थ तो करना चाहिए।

श्री पं० राजाराम जी—मैं अजमेर का ऋग्वेद लेकर इस सूक्त का देवतादि पढ़ देता हूं, और इस मन्त्र का अर्थ कर देता हूं। यह मन्त्र ऋग्वेद ८।४।१९ है। **'देवातिथिः काण्व ऋषिः'**।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—क्या इसका ऋषि देवातिथि है ? निश्चय रूप से कहें।

श्री पं० राजाराम जी—अजमेरवाले ऋग्वेद में ऐसा ही पाठ है। इस सूक्त में २१ मन्त्र हैं। उनके देवता इस प्रकार हैं—१-से १४ तक इन्द्रः; १५ से १८ तक इन्द्रः तथा पूषा; १९ से २१ तक कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि [॥१९॥]

अर्थ—एक मोटा दान, जिसमें सैकड़ों घोड़े थे, दीप्तिमान् अच्छे भाग्यवाले कुरुङ्ग राजा के यज्ञों में। तुर्वशों के अन्दर हमने उसका अभ्यास किया है।

श्री पं० आर्यमुनि जी—यह क्या है, वाद है जल्प है [वा] वितण्डा है ? यदि केवल **'कुरुङ्गो राजा बभूव'** इसमें वेद राजा का वर्णन करता है, या आपके कथनानुसार वह व्यक्ति-विशेष का नाम है ? यदि व्यक्तिविशेष का नाम है, तो आप बतलायें कि किस तरह ? और यह सिलसिला कहां से चला ? या तो आप कहिये कि निरुक्त में लिखा है कि वेद में यह कथा आती है, या इसकी सङ्गति लगाइये। वाद में पक्ष स्थापन करना आवश्यक होता है। आपको पञ्चावयवी वाक्य बनाना पड़ेगा। अनाद्यनन्त आर्य धर्म की फिलासफी यह है कि इस प्रकार से भूत काल का प्रयोग बहुधा आता है। यथा **'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्'** [ऋक् १०।१९०।३], इसी तरह यास्क ने भी दे दिया है। अब पहिले वादी व्यक्तिविशेष का इतिहास सिद्ध करें, तो फिर प्रतिवादी उत्तर देगा।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—प्रातः काल पण्डित भगवद्दत्त जी ने निरुक्त के तीन आचार्यों के प्रमाण पेश किये थे—

'स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो नित्यमविवक्षितस्वार्थः ।' [दुर्ग टीका १०।२६]

'औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्वविरोधात्, परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः' । [निरुक्त समुच्चय ४।१४]

नैरुक्तों का सिद्धान्त है कि वेद में इतिहास नहीं है । यह स्वीकार है, या नहीं ? वादी को अपनी ओर से पञ्चावयवी वाक्य युक्त पक्ष उपस्थित करना चाहिये । या प्रातःकालवाली बात मानी जाय, या कहा जाय कि हम उन्हें प्रमाण नहीं मानते, या केवल बुद्धि को प्रमाण मानते हैं ।

श्री पं० बुद्धदेव जी – कुरुङ्ग राजा था, या नहीं ?

श्री प्रधान जी –आप प्रातःकालवाली बात मानें । दोनों पंडित इन तीनों मन्त्रों के अर्थ कर दें, फिर आपस में जवाब सवाल कर लें । इतिहासपक्षवाले इतिहास सिद्ध करें, तथा दूसरे अपना अर्थ सिद्ध करें, तब निर्णय हो सकता है । सारे निरुक्त के विचार के लिये अलग समय नियत किया जा सकता है ।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—पहिले सारा मसाला इकठ्ठा किया जावे, फिर थ्यूरी घड़ी जाय । इसलिये सब का पक्ष आने दो । Generaligaton के लिये आवश्यक Date एकत्रकर लो । निरुक्त का क्या पक्ष है, वेद का क्या अर्थ है, यह थ्यूरी अभी बनानी है । हम मानते हैं कि दुर्गाचार्य बड़ी सहायता देता है, पर अब वीसवीं सदी में दुर्गाचार्य और स्कन्द नहीं बोलेंगे, अब तो हमें बोलना होगा ।

श्री पं० बुद्धदेव जी—निरुक्त में 'दिविष्टिषु' शब्द के पूर्व तीन शब्द आते हैं—**चोष्कूयते, चोष्कूयमाणः, सुमत्**, फिर **दिविष्टिषु** है ।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—(वीच में) हम प्रातःकालवाली बात पर डटे हुए हैं । या तो उसे माना जाय, या गलत सिद्ध किया जाय ।

कुछ कोलाहल होने के कारण **श्री पं० बुद्धदेव जी** वैठ गये ।

महात्मा जी—पण्डित जी मन्त्र का अर्थ कर देवें ।

श्री पं० राजाराम जी—मैंने निरुक्त का स्थल पढ़ दिया, तथा उसकी हिन्दी भी कर दी । वहां एक मन्त्र का पूर्वार्द्ध दिया है—

"स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु" [ऋक् ८।४।१९]

इस मन्त्र से स्पष्ट है—**"कुरुङ्गो राजा बभूव"** कुरुङ्ग नाम का राजा हुआ था । कुरुओं में जाने से कुल में जाने से । इससे यही प्रतीत होता है कि यास्क वेद में इतिहास मानता है । मेरा मन्त्र के प्रति कोई अर्थ नहीं है । हां, अक्षरार्थ कर देता हूं, पर किसी पक्ष को लेकर समर्थन नहीं कर सकता । जब तक काफी उस पर विचार न कर लूं । अक्षरार्थ इस प्रकार से है—'बड़ा भारी दान, जिसमें घोड़े दीप्तिमान् अच्छे भाग्यवाले कुरुङ्ग राजा के यज्ञों में, तुर्वशों में हमने उसका अभ्यास किया है (वताया, विचारा)

महात्मा जी—प्रातःकाल जो निर्णय हुआ था, उसके अनुसार दोनों करें। दोनों पक्षवाले मन्त्र का अर्थ करें। जब मन्त्र समझ में आ जाय, तब आगे विचार करें।

श्री पं० राजाराम जी—मैंने निरुक्त का [यह] आशय समझा है कि यास्क इतिहास मानता है। मैं मन्त्रार्थ करने से किसी को रोकता नहीं, पर मैं नहीं कर सकता।

महात्मा जी—उन तीन मन्त्रों का अर्थ तो अवश्य करना ही चाहिये।

श्री पं० राजाराम जी—मैं यहां अपनी विद्वत्ता दिखाने नहीं आया। मेरा कर्त्तव्य इतना ही था कि निरुक्त पढ़ देता और उसका अर्थ कर देता। मैंने आपके कहने से एक मन्त्र का अर्थ कर दिया है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—क्या विश्वबन्धु जी इस अर्थ को स्वीकार करते हैं ? क्यों पण्डित विश्वबन्धु जी ! क्या आपकी मोहर भी इस अर्थ पर सबूत है ?

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं तो यहां श्रोता बन कर आया हूं, मैंने अर्थों पर विचार नहीं किया।

श्री पं० शङ्करदेव जी—यदि विचार ही करना था, तो इतनी जनता की क्या आवश्यकता थी ? मुझे भी इतनी दूर से यहां बुलाया गया है। विचार ही चलाना है, तो काफी समय तक चलाना चाहिये। विचार पक्ष प्रतिपक्ष रूप से होता है।

श्री पं० आर्यमुनि जी—यह वाद-कथा है। वाद-कथा में उपक्रम उपसंहार भी होना चाहिए। यदि पं० राजाराम जी इतिहासवाला अर्थ करना चाहें, करें। ऐसे मन्त्रों पर स्वामी जी का अर्थ क्यों न स्वीकार किया जावे ? आपको पक्ष स्थापन अवश्य करना चाहिये। और मैं यह भी आवश्यक समझता हूं कि वादी अपना अर्थ करें।

श्री पं० राजाराम जी—यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है। प्रमाण—**'कुरुङ्गो राजा बभूव'**। बस वादी का पक्ष-स्थापन हो गया।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—प्रातःकाल निरुक्त के तीन बड़े आचार्यों के प्रमाणों सहित नैरुक्तों का सिद्धान्त बताया था, वह स्वीकार है या नहीं ? या केवल बुद्धि को ही प्रामाणिक मानोगे ? मैं फिर प्रमाण पढ़े देता हूं—

"एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्त्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः।...औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।" [स्कन्द निरुक्त टीका २।१२]

"एवं नैरुक्तपक्षे योजना, औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः नित्यत्वविरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः"। [निरुक्त समुच्चय ४।१४]

"यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वा अर्थः आख्यायते दिष्टचु दितार्थाव-भासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः"। [दुर्ग निरुक्त टीका १०।२६]

'कुरुङ्ग' का इतिहास यदि माना जाये, तो वेद महाभारत के पीछे हुए हैं, ऐसा मानना पड़ेगा। कुरुङ्ग कौरवों के साथ ताल्लुक रखता है। महाभारत में आप किसी जगह उसका इतिहास दिखलायें।

मनु० में आया है—

"सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥" [मनु० १।२१]

वेद के शब्दों को लेकर पीछे से नाम रख दिये हैं। वेद में 'कुरुङ्ग' शब्द मौजूद था, पीछे से कोई राजा हुआ, उसका भी नाम 'कुरुङ्ग' हो गया। 'यास्क' उससे पीछे हुए, उन्होंने यदि लिख दिया, तो क्या हुआ ?

वररुचि "निरुक्तसमुच्चय" [४।१४] में नैरुक्तों का सिद्धान्त लिखता है—

"एवं नैरुक्तपक्षे योजना, औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, नित्यत्व-विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः।"

इससे स्पष्ट है कि वह इतिहास नहीं मानता। 'दुर्गाचार्य' ने 'विश्वकर्मा भौवन' (निरुक्त १०।२६) पर लिखा है—

"यः कश्चित् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वा अर्थ आख्यायते विष्टघु दितार्थाव-भासनार्थं स इतिहासः इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः।"

अर्थात् इतिहास सत्य नहीं है। दुर्ग नित्य इतिहास को मानता है। मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं—आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक। आप इन प्रमाणों को गलत साबित करें, या इन्हें स्वीकार करें।

श्री पं० राजाराम जी—इन ६ स्थलों पर विचार करना चाहिये। नतीजा तभी निकलेगा, जब निरुक्त का निर्णय हो जायगा। मैंने पं० भगवद्दत्त जी को कहा था कि हम सारा अपना पक्ष बतला देते हैं। आप हमें लाइब्रेरी से स्कन्द दिखला दीजिये, पर उन्होंने साफ इनकार कर दिया।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—(बीच में) दस वर्ष से ये ग्रन्थ मेरे पास पड़े हैं, तब से पढ़ने के लिये आपने कभी नहीं मांगे। अब शास्त्रार्थ के लिये मांगते थे। इसका मतलब है कि आपको पढ़ने का शौक नहीं है।

महात्मा जी—(बीच में) आप दोनों निरुक्त के स्थल तथा मन्त्र और सूक्त पर विचार करिये। सामान्य निरुक्त के विषय में विचार करने के लिये और समय नियत कर लीजिये।

श्री पं० राजाराम जी—पं० भगवद्दत्त जी कहते हैं कि 'देवातिथि' अशुद्ध पाठ है, परन्तु स्कन्द भाष्य में तथा अजमेर के छपे वेद में भी 'देवातिथेरार्षम्' छपा है। स्कन्द नि० ६।२२ में—

"स्थूरं स्थूलं परिमाणतः विपुलं सदित्यर्थः।", "कुरुङ्गस्य कुरुङ्गनाम्नो राज्ञः। कुरूनसौ पुत्रत्वेन गतवान् कुलीनत्वेन वा कुरूनसौ शत्रुत्वेन गतवान् वा।"

इस से भी यही प्रतीत होता है कि स्कन्द वेद में इतिहास मानता है। तथा 'तुर्वश' शब्द के विषय में मैंने निश्चयरूप से इसलिये नहीं कहा कि निघण्टु में सामान्य पर्य्यायवाची तथा विशेष दोनों तरह के शब्द पढ़े हैं। 'तुर्वश' शब्द पर बड़ा झगड़ा है।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—आप लोगों को मैं यह बताये देता हूं कि जो स्थल निरुक्त के इन्होंने दिये हैं, उनमें जो मन्त्र आते हैं, उन पर स्वामी जी का भाष्य नहीं है। निरुक्त में **'कुरुङ्गो राजा बभूव'** पाठ आ गया है। यहां 'कुरुङ्ग' शब्द विशेषणवाची है। इसका अर्थ है—'कुलीन', जैसा कि व्युत्पत्ति से दिखलाया गया है—**'कुलगमनाद्वा'**। इसलिये **'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः'** इसका अर्थ है कुलीन राजा की दान-स्तुति। **(त्वेषस्य सुभगस्य कुरुङ्गस्य राज्ञः)** कुलीन दीप्तिमान् उत्तमगुणयुक्त राजा, प्रकाशमान आचार्य, विद्युत् के (दिविष्टिषु) उत्तम क्रियाओं=दानादि व्यवहारों में (तुर्वशेषु) धर्मार्थकाममोक्ष जाननेवाले विद्वानों के विषय में अनेकविध अश्वादि शीघ्र गमन करनेवाले जितने पदार्थ हैं, ऐसे धनवाले राजा, आचार्य विद्युत् की स्तुति करते हैं। अर्थात् राजा में यह गुण होना चाहिये। उसके सम्बन्ध में रूपकरूप राजा का नाम 'कुरुङ्ग' आता है। निरुक्तकार लिखते हैं—**"ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान संयुक्ता"** निरुक्त १०।४६। ऋषि की, जिसने अर्थ देख लिया है, कहने के लिये आख्यान की [प्रिय] कल्पना करते हैं।

शताब्दी के अवसर पर किसी ने एक लेख **'मथुरा का अशान्त यात्री'** शीर्षक से लिखा था। उस लेख में लिखा था कि स्वामी विरजानन्द जी ने कहा है—"अय आर्यसमाजियो! तुम्हें मेरी पुरी मथुरा में आने का क्या अधिकार है? जबकि तुम मेरी व दयानन्द की कही हुई बातों पर आचरण नहीं करते हो। जिन ग्रन्थों पर मैं जूते लगवाया करता था, यही ग्रन्थ आज तुम्हारे गुरुकुलों व पाठशालाओं में पढ़ाये जाते हैं। इसलिये अपना डेरा डण्डा उठा कर मथुरा से निकल जाओ।"

इस लेख को समाचारपत्र के सम्पादक ने **'मथुरा में स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द का वार्तालाप'** इस शीर्षक से छापा था। सौ वर्ष पीछे यदि इतिहास लिखा जायेगा, तो उसमें शताब्दी के अवसर पर स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विरजानन्द का मथुरा में वार्तालाप हुआ था, यही लिखा जायगा। **'कुरुङ्गो राजा बभूव'** इसका अर्थ है - **'कुरुङ्गो राजा भवति'**। संस्कृत साहित्य में कहीं कुरुङ्ग का इतिहास बतलाइये?

'कुत्स ऋषिर्भवति' ऐसा पाठ निरुक्त में आता है, किन्तु 'कुत्स' ऋषि निरुक्तकार से पहले का है। यहां **'भवति'** शब्द भूतकाल के लिये दिया गया है। 'कुरुङ्ग' शब्द यहां विशेषण है। आपने **'अमन्महि'** शब्द का अर्थ अभ्यास बताया है। यह अर्थ यहां नहीं हो सकता। आपको धातु बतलाना चाहिये था।

श्री पं० प्रिय रत्न जी—यास्क की प्रतिज्ञा है कि—**'नामान्याख्यातजानि शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च'** अर्थात् नाम धातुज होते हैं।

महाभाष्य में भी कहा है—**"नाम च धातुजमाह निरुक्ते व्याकरणे शकटस्य च तोकम्।"** वेद में रूढ़ि शब्द नहीं हैं, यौगिक व्युत्पत्ति करनी चाहिये। **'इत्यैतिहासिकाः'**, **'इति नैरुक्ताः'**—निरुक्त इतिहासपक्ष अलग देता है।

'कुरुङ्गो राजा बभूव' यह पाठ निरुक्तकार को असम्मत प्रतीत होता । स्कन्द स्वामी के निरुक्त में यह पाठ नहीं था, क्योंकि उसने यह प्रतीक दी हो नहीं । दुर्गवृत्ति में इस प्रतीक का अर्थ नहीं किया है । चाहे नाम शब्द किसी ने बढ़ा दिया है प्रतीत होता है । मूल मन्त्रों को लेकर अर्थ करने से वेदार्थ बहुत अच्छा होता है ।

'अत्र मन्त्रे योऽयं राजा स कुरुगमनाद्वा कुलगमनाद्वा कुरुङ्गविशेषणविशिष्टो बभूव' । इस मन्त्र में जो राजा पड़ा हुआ है, वह कुरुङ्ग-विशेषण-विशिष्ट है । 'कुरु' का अर्थ है—**'यजमान'**, यह निघण्टु ३।१८ में ऋत्विग् नामों में पढ़ा हुआ है । 'कुरून् ऋत्विजो **गच्छति स कुरुङ्गो यजमानः'** । **'त्वेषस्य सुभगस्य'** तेजस्वी और अच्छा धन जिसके पास है । यजमान का दान कितना ऊंचा हो सकता है यह इसमें बतलाया गया है । आप कहते हैं कि यह मन्त्र इतिहास-मूलक है, मैं कहता हूं कि यह मन्त्र इतिहास-मूलोन्मूलक है । इस मन के सब शब्दों की व्याख्या यास्क ने नहीं की, किन्तु 'कुरुङ्ग' में संशय था, इसलिये उसकी व्याख्या इतिहास के खण्डन में कर दी । यह मेरा दूसरा समाधान है ।

अब लीजिये तीसरा समाधान—'बभूव' का अर्थ 'भवति' है । कवि लोग ऐसा प्रयोग कर देते हैं । **'आलस्यं मानसं बुद्धिनाशनं परमं मतं' भवति इत्यर्थः । 'अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः' भवन्तीत्यर्थः** । भूतकाल की अविवक्षा है, इसी तरह यहां भी हो जायगा ।

चौथा समाधान लीजिये—'कुरुङ्ग' नाम वेद में आया है । और उस नाम का राजा भी हुआ हो । यास्क का यह स्वभाव है कि वह तत्सम्बन्धी अन्य शब्दों का भी निर्वचन कर जाते हैं, और तत्सम्बन्धी बातें भी दर्शाते हैं । जैसे बालकों का स्वभाव होता है कि वे गेंद को ठोकर लगाते हुए मिट्टी के ढेले को भी ठोकर लगा देते हैं ।

अब मेरा **'मन्त्रार्थ'** लिख लीजिये—"महान् धन, असंख्य घोड़े या सैकड़ों प्रकार का बल यजमान का यश की इच्छा करनेवालों में राजा के प्रतापी के अच्छे कमाई के धनवाले के दान देने वाले मनुष्यों में प्राप्त करें हम ।"

भावार्थ बहुत आदमी मिलकर प्रार्थना करते हैं कि हम ऐसे गुण वाले राजा यजमान से दान प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं ।

श्री पं० गुरुदत्त जी—'कुरुङ्गस्य—कुलगमनाद् शत्रुकुलानि जेतुं गच्छतीति कुरुङ्गः । अथवा कुरून् दुर्धर्षशत्रूनपि जेतुं गच्छतीति कुरुङ्गः । राज्ञः त्वेषस्य तेजस्विनः सुभगस्य शोभनैश्वर्ययुक्तस्य दिविष्टिषु दिव एषणेषु क्षेमप्रदातृषु इत्यर्थः । स्थूरं महत् शताश्वं बह्वश्वसंयुक्तं राधः धनं तुर्वशेषु मनुष्येषु या रातयः दानानि वयं अमन्महि मन्यामहे ॥

प्रकृतमन्त्रे राज्ञो धर्मः वर्णितः, यद्राजा स्वपराक्रमेण शत्रुकुलं विजित्य यत्किञ्चिद्धनं लभेत तत्सर्वं प्रजायाः कल्याणाय सर्वोपकारिषु कर्मसु नियोजयेत् । इत्थं करणेन तस्य यशो वर्धते इति ॥

'कुरुङ्गो राजा बभूव' सामान्य नाम है, विशेषणवाची शब्द है । व्यक्ति विशेष नहीं है । 'बभूव' का अर्थ 'भवति' होता है । 'बभूव' परोक्षार्थ का बोधक होने पर राजा अभिप्रेत हो, तो भी कोई हानि नहीं, यह भी एक पक्ष है । परन्तु मैं यह मानता हूं कि 'बभूव' वर्तमान का बोधक है ।

इसके लिये यास्क का ही प्रमाण लीजिये। प्रायः यास्क कई स्थलों में अपने काल से प्राचीन ऋषियों का वर्णन करता हुआ वर्तमानकाल का प्रयोग करता है। जैसे—**च्यवन ऋषिर्भवति, ऋषिः कुत्सो भवति, नोधा ऋषिर्भवति।**

वैदिकी प्रक्रिया—छन्दसि बहुलम्, व्यत्ययो बहुलम्। 'सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणां कालहल-स्वरकर्तृयङां च। व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि च सिध्यति बाहुलकेन'। परोक्षे लिट्, छन्दसि लिट्, लिटः कानज् वा, क्वसुश्च। कवयस्तु बहुलं प्रयुञ्जते—'तं तस्थिवासं नगरोपकण्ठे' इत्यादि-प्रयोगदर्शनात्। छन्दसि लुङ्लङ्लिटः, धातुसम्बन्धे प्रत्ययाः लकारार्थप्रक्रियायामपि।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—पं० प्रियरत्न जी ने ठीक ही कहा है कि यह पाठ यास्क का नहीं है। पीछे से किसी ने मिला दिया है। दुर्गाचार्य के समय में जो निरुक्त था, वह उसकी सारी की सारी Text को Reproduse करता है। यदि यह सिद्ध हो जाय कि वहां यह वाक्य मौजूद नहीं था, तो मानना पड़ेगा कि दुर्ग के पीछे से किसी ने मिला दिया।

(१) '**कुरुङ्गो राजा बभूव**' दुर्ग की कई हस्तलिखित पुस्तकों में 'नाम' शब्द नहीं है, और दुर्ग ने इस वाक्य का अर्थ भी नहीं किया। यदि वह दुर्ग के समय में होता, तो अवश्य उसका अर्थ करता। (२) निरुक्त १०।५ में '**ऋषिर्नाभाको बभूव**' दुर्ग ने यह पाठ नहीं दिया और, नाही इसकी व्याख्या की है। (३) 'कुशिको राजा बभूव' दुर्ग ने केवल '**कुशिको राजा**' पाठ दिया है। '**बभूव**' पाठ नहीं है। सच बात तो यह है कि यह पाठ पीछे से किसी ने मिला दिये हैं। यदि आप यह मान लें, तो झगड़ा खतम है।

श्री पं० चारुदेव जी—यास्क निर्वचन करता है, अर्थ करना उसका मुख्य विषय नहीं। निर्वचन के विषय में बड़े-बड़े विद्वानों को भ्रान्ति है। व्युत्पत्ति तथा अर्थ में भेद होना है। 'कुरुङ्ग' के विषय में पाणिनि फेल हो गया है। उसके व्याकरण से यह शब्द सिद्ध नहीं होता। यास्क अपना सारा तर्क निर्वचन में लगा देते हैं। यास्क का काम निर्वचन करना है, अर्थ करना नहीं। जिस तरह मांस की व्युत्पत्ति की है, पर मांस का अर्थ वही है जो प्रचलित है। मैं पं० प्रियरत्न जी से पूछना चाहता हूं कि रूढि व्युत्पत्ति क्या चीज होती है? शब्द लौकिक और वैदिक धातुज हैं, पर योग-रूढि अवश्य मानने पड़ेंगे। केवल विशेष शब्द यौगिक होते हैं, अन्य शब्द योगरूढि। '**मत**' का अर्थ '**भवति**' नहीं, किन्तु वहां पर भाव है—**अस्तीति शेषः**। '**अस्तीति शेषः**' व्युत्पत्ति अर्थ नहीं होता। नैरुक्त प्रक्रिया को अच्छी तरह समझना चाहिये।

श्री पं० रामलाल जी - मैं पं० चारुदेव जी से पूछता हूं कि फल के गूदे के लिये संस्कृत साहित्य में मांस के सिवाय और कोई शब्द दिखलाइये। यौगिक तथा रूढि के लक्षण कर दीजिये।

श्री पं० बुद्धदेव जी—कवि लोग छान्दस प्रयोग कर दिया करते हैं। रामायण सुन्दरकाण्ड में—**ददृशे स महाकपि; गमिष्ये यत्र वैदेही; यं त्वं मां पृच्छसे।** '**सज्जन्ते**' महाभाष्यकार प्रयोग करते हैं। इस तरह वैदिक प्रयोग कवि कर दिया करते हैं। '**बभूव**' का अर्थ भी इसे वैदिक मानकर '**भवति**' है। **तत्करोति तदाचष्टे**' में '**करोति**' वर्तमानकाल में दिया गया है, किन्तु भूत या भविष्य में भी प्रयोग होता है। जैसे—**अपपठत्**।

मैं पहले तीन शब्द इसके साथ जोड़ता हूं—**'चोष्कूयते, चोष्कूयमाण:** तथा **सुमत्** । तीनों शब्द राजा के विषय में हैं ।**'चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान्'** [**ऋक्** ६ । ४७ । १६]; **'चोष्कूयमाण इन्द्र भूरि वामं मा पणिर्भूरस्मदधि प्रवृद्ध** [**ऋक्** १ । ३३ । ३]; **'उप प्रागात् सुमन्मेऽधायि मन्म'** [**ऋक्** १ । १६२ । ७]—ऐसा राजा हो, **शताश्वं क्षत्रं 'क्षत्रं वा अश्व:',**'**महते क्षत्राय ज्येष्ठाय'** राजा शतबल की पुष्टि करनेवाला हो, उसकी हम स्तुति करते हैं । परमात्मा का दान सबसे बड़ा है । **'अहं भूमिमददा-मार्याय'** [**ऋक्** ४ । २६ । २] भूमि आदि का दान परमात्मा ने दिया ।

मन्त्रों का सौन्दर्य सम्पादन करना हम दोनों का काम है, क्योंकि हम दोनों ही वेदों को मानते हैं । इतिहासपक्ष से अर्थ करने में सौन्दर्य नहीं रहता । वेद का अर्थ खोल कर समझाइये । पहली बात—(१) 'कुरुङ्ग' के माता-पिता का नाम तथा परिचय दीजिये । (२) 'कुरुङ्ग' का नाम पहिले क्या था ? क्या उसके माता-पिता ने यह रखा था ? अथवा (३) उसे कोई खास काम करने से यह नाम मिला था ? तो वह कौनसा काम था ? (४) **अमन्महि=मन्यामहे,** यह फैसला कुरुङ्ग के विषय में किसने दिया था ? उसका नाम बतलाइये ? यदि ऋषि ने लिख दिया, तो पूरा इतिहास क्यों नहीं दिया ? **कुरुगमन** क्यों कहा गया ? (५) 'कुरुङ्ग' नाम **कुरुगमन** से बना या **कुलगमन** से ?

श्री महता राम चन्द्र जी--इस मन्त्र का अर्थ यह है—**कुरुङ्गस्य**=उद्योग करने वाला, कुलों को जीतने वाला,दुश्मनों को काटने वाला,उसको बहुत ऐश्वर्य सैकड़ों घोड़े तोपखाने खच्चरें मिलती हैं, स्वर्ग में जाने के लिये । मनुष्यों में जितने दान हैं, उनमें यह दान बढ़ा हुआ है ।

श्री पं० प्रिय रत्न जी--जो कोई शब्द मन्त्र में पड़ा हो, उसी का निर्वचन करते हैं, यह बात आवश्यक नहीं । किन्तु भाषा-शब्दों का भी निर्वचन करते हैं । नेति **प्रतिषेधार्थीयो भाषायाम्। "नैगम-रूढिभवं हि सुसाधु"=नैगमाश्च रुढिभवाश्च शब्दा: साधव: भवन्ति ।** यहां वैदिक तथा लौकिक शब्द पृथक्-पृथक् दर्शाये गये हैं । रुढि रीति का नाम है ।

पण्डित सभा की तृतीय बैठक, १६।५।३१ को प्रात:

महात्मा जी—कल कुरुङ्ग-विषयक जो मन्त्र था, उसके पं० राजा राम तथा आप सबने अपने-अपने अर्थ कर दिये थे । अत: किसी दूसरी बात में जाने से पहिले प्रार्थना है कि दोनों पक्ष अपने-अपने अर्थ लिख कर दे देवें, ताकि आर्यसमाज के आवश्यकता के समय वह काम आयें, और वह सनद रहे । पं० राजा राम के पक्षवाले यह अर्थ लिख देवें । और जो वेद में इतिहास नहीं मानते, वह भी अपना मन्त्र का अर्थ लिखकर दे देवें, ताकि यह विषय समाप्त हो । निरुक्त के वाक्य का अर्थ भी लिख दिया जावे । सम्पूर्ण निरुक्त पर विचार करने के लिये दूसरा समय रख लें, तो अच्छा हो ।

श्री पं० राजा राम जी--पं० भगवद्दत्त जी भी अपना अर्थ लिखा देवें । तीन मन्त्रों का अर्थ किसी ने भी नहीं किया । मैंने तो एक मन्त्र का अर्थ कर दिया । मन्त्रों के अर्थ करने की जिम्मे-वारी नहीं ।

महात्मा जी—आप सब लोग अपना अर्थ कर देव ।

श्री पं० विश्व बन्धु जी—हमने पं० भगवद्दत्त जी को अर्थ लिखा दिया था । तथा अन्य लोगों के अर्थ भी आपके पास पहुंच चुके हैं । उनसे दस्तखत करवा लिये जावें ।

महात्मा जी—आप लोग मन्त्रार्थ लिख कर देवें, फिर परस्पर निर्णय कर लेवें ।

श्री पं० विश्व बन्धु जी—कोई आदमी नहीं कह सकता कि मेरा अर्थ ठीक है । जितने उठे हैं, उन्होंने उतने तरह के अर्थ किये हैं । तथा अब निर्णय होना चाहिये । उस पर बहस होना [चाहिये]। यौगिक प्रक्रिया के आधार पर । जितने अर्थ किये हैं, उन पर दोष आ सकते हैं ।

महात्मा जी—अच्छा अभी आप विचार कर लें । विचार हो जाने के बाद अर्थ दे दिये जावें ।

श्री पं० राजा राम जी—निरुक्त के विषय में स्वतन्त्ररूप से विचार होता,तो ठीक था । किन्तु हमसे ६ स्थलों पर विचार के लिये कहा गया था, इसलिये इन पर विचार होना चाहिये । मैंने कहा था कि यास्क ने 'कुरुङ्ग' का अर्थ कुरुङ्ग राजा किया है । इससे सिद्ध है कि वह वेद में इतिहास मानता है । इस पर कहा गया है कि '**बभूव**' पद ही नहीं है । किसी ने कहा कि 'बभूव' का अर्थ 'भवति' है । 'बभूव' का अर्थ बड़ी दिलेरी से किया गया है । यह तो यास्क का वचन है, वेद नहीं है । जहां '**छन्दसि लुङ्लङ्लिटः**' और **सुप्तिङुपग्रहलिङ्गनराणाम्०**' इत्यादि लगेगा । यहां परोक्षभूत में आया है, इसे वर्तमान में कोई नहीं वर्तता, किसी ने उदाहरण नहीं दिया ।

पं० भगवद्दत्त जी ने कहा था कि '**देवातिथेरार्षम्**' पाठ गलत है, इसमें क्या प्रमाण है ? मुझे हर जगह रोकने की कोशिश की जाती है । पण्डित जी कहते हैं कि—'**कुरुङ्गो राजा बभूव**' यह पाठ प्रक्षिप्त है । इसके लिये प्रमाण तो कोई दिया ही नहीं । मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, यदि यह प्रक्षिप्त साबित हो जाये । परन्तु इसके लिये प्रमाण चाहिये । मन्त्रार्थ करने में सारा जोर '**कुरुगमनाद्वा कुलगमनाद्वा**' इस व्युत्पत्ति पर दिया गया है । एक बात '**भवति**'के विषय में कह देना चाहता हूं । '**कुरुङ्गो राजा बभूव**' में 'बभूव' पद का अर्थ यदि 'भवति' किया जावे, तो '**राज्ञः**' पद व्यर्थ जाता है । उसका अर्थ होगा कि—'कुरुङ्ग' राजा का नाम है । जिस व्युत्पत्ति के आधार पर कुलीन अर्थ किया है, वहां तक मेरी दृष्टि नहीं पहुंची । इसलिये कुरुङ्ग'मैंने वैसे ही रहने दिया है । 'स्कन्द स्वामी' के आधार पर अर्थ करने से उनके पक्ष में ही दोष आता है । क्या वह '**कुलगमनाद्वा**' के आधार पर कुलीन अर्थ करते हैं ? उस अर्थ में भी इतिहास पाया जाता है ।

पं० ब्रह्मदत्त जी ने '**राज्ञः**' का अर्थ बिजुली किया था । अब कुलीन बिजुली कौनसी होती है ? '**अश्व**' का वीर्य अर्थ किया था, वह किस आधार पर है ? यह यौगिक प्रक्रिया को न समझते हुये भिन्न-भिन्न असावधान निराधार अर्थ किये गये हैं ।

पं० चारुदेव जी ने प्रक्रिया के विषय में बहुत कुछ कह दिया । यास्क का काम निर्वचन करना है, अर्थ शब्दों का नियत होता है । निर्वचन का यह अर्थ नहीं, जो चाहो वह अर्थ ले लो । यास्क ने सारे अर्थ देकर उनका निर्वचन किया है । "**अन्यद्धि प्रवृत्ति-निमित्तं, अन्यद्धि व्युत्पत्ति-निमित्तम्**"जैसे 'धनपत' का अर्थ वह लड़का है, जिसका वह नाम है, पर व्युत्पत्ति-निमित्त धन का जो मालिक है । 'धनपत को लाओ' कहने पर धन का जो मालिक है उसे नहीं लायेंगे, किन्तु जिसका नाम है उसे लायेंगें । जैसे 'पञ्जाब' शब्द देश-विशेष में प्रवृत्त है । इसका व्युत्पत्ति-निमित्त पांच पानी भी

हो सकते हैं। यदि यहां पांच पानी इकट्ठे कर देंगे, तो वह पञ्जाब नहीं होगा। यही यास्क का अभिप्राय है।

भूल इस प्रक्रिया को न समझने से होती है। जैसे 'श्मशान' की व्युत्पत्ति यास्क ने की है—**'श्म शरीरं शयनं भवति'** अर्थात् जहां शरीरों का शयन होता है। इस हिसाब से बिस्तरे का नाम भी श्मशान होगा, परन्तु श्मशान का अर्थ मसान ही होता है, जहां मुर्दे जलाये जाते हैं। इसी प्रकार **'सप्त'** का अर्थ **'सृप्ता'** बढ़ी हुई संख्या है, तो आठ का नाम भी सप्त क्यों नहीं ? इससे आगे जो चीज गई हुई होगी वह सप्त कहलायेगी। इससे जो मेरे आगे होगा, वह भी सप्त कहलायेगा। इसी प्रकार **'पञ्च पृक्ता संख्या'** मिला हुआ अर्थ लिया जाये, तो कपड़ा भी मिला होता है। इससे सिद्ध हुआ कि व्युत्पत्ति-निमित्त और है, और प्रवृत्ति-निमित्त और है। व्युत्पत्ति अर्थ का बोधक नहीं। यदि इसी के सहारे पर अर्थ करना होगा, तो कोई व्यवस्था नहीं रहेगी, कोई नाम नहीं बन सकता। जैसे कन्या का निर्वचन किया है—**'कन्या कमनीया भवति'**, इससे माता भी कन्या हो गई, परन्तु उसे कन्या नहीं कहते। मूली को भी कन्या नहीं कह सकते, किन्तु कन्या को ही कन्या कहेंगे। इस प्रकार करने से तो अर्थ के साथ सम्बन्ध ही नहीं जुड़ता। अतः जो चाहो सो अर्थ नहीं हो सकता। **'हन्तो हन्तेः'** जो मारता है, वह 'हस्त' होता है, तो क्या तलवार का नाम भी हस्त हो जायेगा ? स्कूलों के मास्टर भी 'हस्त' हो जायेंगे ? इससे जाना जाता है कि यास्क को व्युत्पत्ति अभिप्रेत है, अर्थ नहीं।

जो अर्थ निरुक्त की प्रक्रिया को न समझकर किये गये हैं, वह आपस में मिलते नहीं। तथा एक बात और महात्मा जी से निवेदन करना चाहता हूं। उन्होंने मुझे यह कहा कि आपने एक मन्त्र का अर्थ कर दिया, वह आपकी कृपा है। ऐसा उन्हें नहीं कहना चाहिये, क्योंकि कृपा तो उन्हीं की है।

श्री पं० आर्य मुनि जी—जिसे 'निरुक्त' कहते हैं, यदि उसकी निरुक्ति हमारे किसी काम नहीं आती, तो निरुक्त सारा का सारा व्यर्थ जाता है। आप बतलायें कि ब्रह्म शब्द का व्युत्पत्ति-निमित्त क्या है, और प्रवृत्ति-निमित्त क्या है ? संज्ञावाची 'ब्रह्म' शब्द का प्रयोग यदि आया हो, तो वह भी बताइये। अर्थों को विशद करना ही निरुक्त का काम है। यदि ऐसा स्वीकार न किया जाये, तो यास्क का निरुक्त हमारे कोई काम नहीं आता।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—पं० राजा राम जी ने अर्थ पर दोष दिये हैं, उनका उत्तर दिया जायगा। अब पहिले निरुक्त को लीजिये। 'पञ्च सप्तादि' शब्द जितने भी बोले हैं, वे सब एकार्थवाची हैं। 'गौ' शब्द की व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति-निमित्त बतलाइये। मैं उससे अधिक बतलाने के लिये तैयार हूं। दूसरी बात मैं यह पूछता हूं कि 'गोपाल' शब्द का व्युत्पत्ति तथा प्रवृत्ति[निमित]क्या है ? महाभाष्य में लिखा है—**'गोपालकमानय,कटजकमानयेति। उभयगतिस्तस्य भवति** [बहुगण०। १। १। २३]। आप प्रवृत्ति-निमित्त तथा व्युत्पत्ति-निमित्त को नहीं जानते। शास्त्र इसका निर्णायक है, क्योंकि महाभाष्य में कहा है—**'सन्ति वै शब्दाः अप्रयुक्ताः'। 'बृहस्पतिश्च प्रवक्ता इन्द्रश्चाध्येता दिव्यं वर्षसहस्रमध्ययनकालः न चान्तं जगाम', सर्वे देशान्तरे ...'[महा० १। १। १ आ०]** इत्यादि शब्द का विषय बहुत है, इसको जाने बिना कौन कह सकता है कि मैं 'शब्द' का अर्थ 'परमात्मा' सप्रमाण करूंगा।

'कुरुङ्गो राजा बभूव' इसमें 'बभूव' का अर्थ 'भवति' निरुक्तकार ने स्वयं खोल दिया है, जैसा कि **कुत्स ऋषिर्भवति, नोधा ऋषिर्भवति, च्यवन ऋषिर्भवति'** इत्यादि काल की अविवक्षा से प्रयोग किये हैं, जैसा कि पं० गुरुदत्त जी ने बताया है । इसी प्रकार यहां पर भी 'बभूव' से **'भवति'** अभिप्रेत है । **भवति अस्ति विद्यते** में भेद है, यह भी समझ लेना चाहिये । इससे स्पष्ट है कि आचार्य्य को यहां पर काल-सामान्य अभिप्रेत है ।

प्रक्षिप्त का उत्तर पं० भगवद्दत्त जी देंगे । कल मैंने मन्त्र का अर्थ जल्दी-जल्दी शीघ्रता में किया था । आपको आज बतला देता हूं कि कुलीन बिजुली कैसे होती है । मन्त्रार्थ लीजिये, इससे स्पष्ट हो जायेगा—

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञः त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ [ऋक् ८।४।१९]

अन्वयः—त्वेषस्य सुभगस्य कुरुङ्गस्य राज्ञो दिविष्टिषु रातिषु तुर्वशेषु शताश्वं स्थूरं राधोऽमन्महि ॥

पदार्थः—(त्वेषस्य) **'त्विष दीप्तौ'** इत्येतस्माद्धातोः पचाद्यचि त्वेषः, तस्य त्वेषस्य दीप्तिमतः । **'चितः'** [अ० ६ । १ । १५७] इत्यन्तोदात्तत्वम् । (सुभगस्य) **'भज सेवायाम्'** इत्येतस्माद्धातोः **'पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण'** [अ० ३ । ३ । ११८] इति घप्रत्यये **'चजोः कु घिण्यतोः'** [अ० ७ । ३ । ५२]इति कुत्वे, भज्यते सेव्यते मुमुक्षिभिर्धनार्थिभिर्विद्यार्थिभिर्भोगार्थिभिर्वा, सुष्ठु भगोऽस्येति सुभगः, तस्य सुभगस्य । **'क्त्वादयश्च'** [अ० ६ । २ । ११७] इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वं, शौभनैश्वर्यकलाविद्यायुक्तस्य इत्यर्थः । (कुरुङ्गस्य) कुरून् क्रूरान् ऋत्विजो वा गच्छति प्राप्नोति जगति विनाशयति वा यः स कुरुङ्गः । पाणिनि फेल नहीं होता, देखिये इस तरह से कुरुङ्ग शब्द सिद्ध होता है । **'डोऽन्यत्रापि दृश्यते'** [अ० ३ । २ । ४८ वा०] इति गमेर्डः, पृशोदरादिः । तस्य कुलीनस्य दुष्टविनाशकस्य राज्ञः, दुष्टज्ञानविनाशकस्याचार्य्यस्य, विविधक्रियाप्राप्ताया विद्युतः, **'गतिकारकोपपदात्कृत्'** [अ० ६ । २ । १३८] इति प्रकृतिस्वरे प्रत्ययस्वरेण अन्तोदात्तत्वम्, सुपोऽनुदात्तत्वं **'उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः'** [अ० ८ । ४ । ६५] इति स्वरितत्वं सम्पन्नम् । **(राज्ञः) 'राजृ दीप्तौ'**, यद्वा **'राजति ऐश्वर्यकर्मा अर्चतिकर्मा वा'**, राजते दीप्तिमान् भवति सर्वैश्वर्य्ययुक्तो भवति इति वा, राज्यते अर्च्यते पूज्यते इति वा । ऐश्वर्यवतो राज्ञः प्रकाशयुक्तस्य विद्युतः पूज्यस्याचार्य्यस्य । राजतेः **'कनिन् युवृषितक्षिराजिधन्विप्रतिदिवः'**(उणा० १।१५६)इति 'कनिन्'प्रत्यये आद्युदात्तत्वं च । तत्र प्रमाणानि—**"राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति"** (श० ६ । ४ । १।१) ।

'कुरुङ्ग' का वंश तथा कुलादि पूछा गया था, किन्तु उसका कोई उत्तर नहीं दिया गया । यह देखिये, इस सप्ताह के **'पंजाब केसरी'** में 'कुलुङ्ग' का इतिहास निकला है । सम्भवतः इससे काम बन जायगा । मन्त्रार्थ-प्रक्रिया भी समझ लेनी चाहिये । अच्छा होता आप मेरे प्रश्नों का उत्तर उसी समय दें देते, तो निश्चय हो जाता । इन्द्र का प्रकरण ऊपर से आ रहा है । राजा का इन्द्र के साथ सम्बन्ध है । एक बात भी बतला देता हूं कि आपकी सर्वानुक्रमणी भी अपूर्ण है ।**'स्तनयित्नुरिन्द्रः** (श० ११।६।३ । ९); **राजा उरुबली भावुकः** (श० ३।२।२।८); **इन्द्रो ह भूत्वा असुरांस्ततर्ह** (अथर्व०

१४।७।२); निरुक्त २।२१ में भी आया है—'**उद्यन्नादित्यः सर्वेषां ज्योतिषां राजा भवति**'। '**राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः**' [ऋक् १ । ६८ । १] परमात्मापरक अर्थ होता है। (दिविष्टिषु) द्यौ-र्गम्यते प्राप्यते यया सा, राज उत्तमक्रियासु विद्युतो विज्ञानयुक्तक्रियासु आचार्य्यस्य विद्यासम्बन्धि क्रियासु, दिवो 'विच्' प्रत्ययः गुणाभावश्च। दिवि शब्दोपपदात् इषेर्गत्यर्थादिच्छार्थाद्वा करणे 'क्तिन्' प्रत्ययः, दिवः (सम्बन्धि) इष्टि एषणा अस्येति बहुव्रीहौ समासे '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' [अ० ६। २। १] इति पूर्वपदाद्युदात्तत्वम्। (रातिषु) 'रातिर्दानकर्मा' विप्रदानादिषु संसारोपकारकत्वेन विविधैश्वर्यदानक्रियासु विद्यादानक्रियासु वा। '**रा दाने**' यद्वा '**रै शब्दे**' उभाभ्यां '**वसेस्तिः**' [उणा० ४। १८०] इति बाहुलकात् 'ति' प्रत्ययो भावे, प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम्। (तुर्वशेषु) 'तूर त्वरणहिंसनयोः' अस्मात् 'क्विप्' प्रत्ययः=तूरः। अश्नोतेश्च पचाद्यचि तूर्णमश्नुते, पृशोदरादित्वात् मध्योदात्तत्वं, यद्वा चतुर्षु धर्मार्थकाममोक्षेषु वश एषामिति चतुर्वशः सन्तः चकारलोपेन तुर्वशः। '**तुर्वशः इति मनुष्यनाम**' निघण्टु [२।३] मनुष्येषु मनुष्यव्यवहारेषु वा विद्युतः आचार्य्यस्य च। यह 'तर्वशेषु' की व्याख्या देवराजयज्वा ने की है। मेरी सब बात सप्रमाण है। (शताश्वं) शतमसंख्याता अश्वा यस्येति तं शताश्वम्। '**वीर्यं वै अश्वः**' (श० २।१।४।२३); **अश्नुतेऽध्वानं महाशनो भवतीति वा** (नि० ४।१३)। 'अशूङ् व्याप्तौ' **अशूप्रुषिलटिकणि०** [उ० १।१५१]उत्यादिना 'क्वन्' प्रत्ययः। अश्नुते इत्यश्वः तुरङ्गः, उपलक्षणमेतत्, तेन गवादयश्च। व्यापको विद्युतः प्रकाशः तम्, '**वीर्यं अश्वः**' (श० २।१।४।२४)। **बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**[अ० ६।२।१] इति पूर्वपदप्रकृति-स्वरे शतशब्दो ऽन्तोदात्त इति।

स्थूरं—आपने 'कुरुङ्ग' शब्द पर कहा था कि पाणिनि फेल हो गया। पाणिनि फेल नहीं हुआ, बल्कि आपने उसे समझा नहीं। '**सर्ववेदपरिषदं हीदं शास्त्रं**' 'स्थूरं' शब्द को अर्थ व्युत्पत्ति सहित सिद्ध करें। मैं तो इस तरह के चैलेंज आदि देने के ढंग को बुरा समझता हूं, परन्तु जब हमें यह कहा जाता है कि मेरी बात कोई समझ ही नहीं सकता, तब हमें इस प्रकार की बात कहनी पड़ती है। '**व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्नहि सन्देहादलक्षणम्**' व्याख्या से शास्त्रों का तत्त्व समझ में आता है। (स्थूरं) महत् स्थिरं धनं स्थिरं विज्ञानं स्थिरं ज्ञानं वा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी ने अथर्व प्रातिशाख्य की भूमिका में **उभे वनस्पत्यादिषु युगपत्** [अ० ६।२।१३६], **देवताद्वन्द्वे च** [अ० ६। २। १४०] **देवताद्वन्द्वानि चानामन्त्रितानि**, इन सूत्रों को लेकर लिखा है—This Provisioo makes up for deficioency even in Panini अर्थात् यह बात पाणिनि को समझ में नहीं आई, और पाणिनि की न्यूनता को '**देवताद्वन्द्वानि चानामन्त्रितानि**' [शु०य०प्रा०२।४८]इस प्रातिशाख्य के सूत्र ने पूरा किया है। मैं हजार पण्डितों के बीच में कहने को तैयार हूं कि पाणिनि ठीक है। आप अपना पक्ष स्थापित करें, मैं उसका खण्डन करूंगा। 'अमन्महि' का धातुनिर्देश भी कर दें, तो अच्छा है।

(राधः) '**राध साध संसिद्धौ**' असुन् प्रत्ययः। '**राध्नुवन्ति साध्नुवन्ति धर्मादीन् पुरुषार्थान्**' स्कन्द के भाष्य में ऐसा लिखा है, '**ज्ञानरूपं धनं**'। '**ञ्नित्यादिर्नित्यम्**' [अ० ६। १। १९१] इति आद्युदात्तत्वम्। राधः धनं ज्ञानरूपं धनम् (अमन्महि) अर्चामः। '**तिङ्ङतिङः**'। [अ० ८। १। २८] इति निघातः।

ईश्वरपक्षेऽपि—(त्वेषस्य) दीप्तिमतः (शुभगस्य) परमैश्वर्ययुक्तस्य (कुरुश्रुतस्य) कुरु कर्मणीयो भक्तमतं गच्छति प्राप्नोति इति जगदीशस्तस्य (दिविष्टिषु) उत्तमगुणप्रापिकासु क्रियासु (रातिषु) दानविज्ञानदानक्रियासु (तुर्वशेषु) मनुष्येषु प्राणिमात्रेषु (शतावयं) विविधैश्वर्यकरोत्तमं धनं (अमन्महि) याचामः।

मेरे पास वैदिक रीति से भी इस मन्त्र का अर्थ था, जो मैं आपको बतलाता, किन्तु समय थोड़ा है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—निरुक्त की प्रक्रिया क्या है, इस पर बड़ा जोर दिया गया है। मुझे भी अभिमान है कि मैंने १५ वर्ष निरुक्त का अध्ययन किया है। दो तरह की बात है—(१) जब से वेद-मन्त्र है, तब से लौकिक संस्कृत विद्यमान है, या वैदिकभाषा से लौकिकभाषा निकली है? वैदिकभाषा का प्रयोग पहले होता था, हम यह मानते हैं, कि दोनों साथ-साथ चलती हैं? वैदिक भाषा का सृष्टि में कभी प्रयोग नहीं हुआ, अतः लौकिक और वैदिक संस्कृत की प्रवृत्ति तथा व्युत्पत्ति में भेद है। निरुक्त में **'कुरुश्रुतो राजा बभूव'** यह पाठ पीछे से डाला है, यास्क के समय में नहीं था।

निरुक्त तथा वैयाकरण लौकिक तथा वैदिक शब्दों को पृथक्-पृथक् मानते हैं। **महाभाष्यकार** [अ० ३।३।१] लिखते हैं—**'नैगम[रूढि]भवं हि सुसाधु'** नाम धातुज हैं। व्याख्या करते हुए लिखते हैं—**'नैगमाश्च रूढिभवाश्च शब्दाः'** वैदिक तथा लोक में होने वाले शब्द नैरुक्त तथा वैयाकरण शाकटायन के मत से सब नाम धातुज हैं। 'कुरुश्रुत' भी धातुज है, आग्रह नहीं करना चाहिये। 'तुर्वश' शब्द के लिये राजाराम जी ने कहा था कि मुझे इसका अर्थ नहीं आता, परन्तु 'तुर्वश' शब्द 'मनुष्य' नामों में निघण्टु [२।३] में पढ़ा है, तो मान लेना चाहिये।

अब लीजिये निरुक्त की प्रक्रिया। आप कहते हैं—'यास्क का प्रधान काम निर्वचन करना है। देखिये यास्क लिखता है—**'एकार्थमनेकशब्दमित्येतदुक्तम्'** निरुक्त ४।१। शब्दों के अर्थ मौजूद थे, वेदों से शब्द लेकर नाम रख दिये। आप कहते हैं—निघण्टु में पर्यायवाची भी हैं, विशेष भी। निरुक्तकार लिखते हैं—**'एतावन्त्यस्य सत्त्वस्य नामधेयानि'** [निरुक्त १।२०], इससे प्रतीत होता है कि निघण्टु में पठित पर्याय शब्द ही हैं, बहुधा विशेष्य-विशेषण हो जाते हैं। एक शब्द एक जगह पर विशेष्य होता है, दूसरी जगह पर विशेषण बन जाता है। जैसे एक स्थान पर आता है - **'उर्वी पृथिवी'** दूसरी जगह आता है—**'पृथिवी भूतानुर्वी'**। इसी तरह से **'अग्ने यं यज्ञमध्वरम्'** [ऋ० १।१।४] इसका अर्थ किस तरह से हो सकता है? किसी न किसी को विशेषण अवश्य बनाना पड़ेगा। यह विशेष्य विशेषण की तबदीली वेद में हो जाती है।

अमृतसर में स्वरूपदास जी षट् शास्त्री थे। उन्होंने 'अग्नि' का अर्थ 'नया' किया, और कहा यह भी अर्थ हो सकता है। मैंने उन्हें सूक्त तथा मन्त्र की संगति लगाने को कहा, तो वह मान गये कि तुम ठीक कहते हो। प्रत्येक शब्द धातुज होकर विशेष अर्थों में लिमिटिड हो जाता है। आप कहते हैं कि अर्थ नियत नहीं, हमने भी अर्थ को निर्धारित किया है। 'अग्नि' शब्द **'अञ्चु गतिपूजनयोः'** अर्थों में ही आयेगा। वेद में रूढि शब्द कौनसा है, जरा बताइये? मनुस्मृति में जो कि ब्राह्मण ग्रन्थों से संगृहीत की है, उसमें लिखा है—

'सर्वेषान्तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे' ॥ [मनु० १।२१]

सब नाम वेदों से लेकर पीछे से रखे गये हैं । वेद में सब शब्द पहिले से मौजूद थे, उनसे लेकर ऋषियों के तथा नद्यादि पदार्थों के नाम रखे गये । निघण्टु ब्राह्मण ग्रन्थों के आधार पर बना है । यदि सारे ब्राह्मण ग्रन्थ मिल जायें, तो सारा निघण्टु उनमें से निकाल कर दिखा सकता हूं । ब्राह्मण कोई एक हजार थे, जिनमें से बहुत से नहीं मिलते । 'सर्वे वेशान्तरे' [महा० अ० १ पा० १ आ० १ वा०] महाभाष्य में आया है—

'सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशत-मध्वर्युशाखाः सहस्रवर्त्मा सामवेदः एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाथर्वणो वेदो वाकोवाक्यमितिहासः पुराणं वैद्यकमित्येतावाञ्छब्दस्य प्रयोगविषयः' ॥ [महा० अ० १ पा० १ आ० १]

शब्द का विषय अनन्त है, सब नहीं जाना जा सकता । हम कल से तीन आचार्यों के प्रमाण पेश कर रहे हैं कि उनका सिद्धान्त है कि वेद में इतिहास नहीं है—**'औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः परमार्थेन तु नित्यः पक्ष इति सिद्धम्'** । [निरुक्त समु० ४।१४] । वह हजम किये जा रहे हैं, उनका उत्तर देना चाहिये ।

अब पाठ के विषय में लीजिये । इतिहास-सम्बन्धी **'बभूव'** शब्द तीन स्थान पर आया है—**'कुशिको राजा बभूव'** [निरु० २।२५] डा० लक्ष्मणस्वरूप, जिन्होंने निरुक्त पर इतना परिश्रम किया, लिखते हैं कि—'दुर्ग अपने समय के निरुक्त के हर एक शब्द को लिखकर टीका करता है । अब यदि ठीक निरुक्त न मिल सके, तो दुर्ग के शब्दों से सारा निरुक्त निकाला जा सकता है । सारे भाष्यकार १५वीं शताब्दी से इधर-इधर के हैं, दुर्ग ही पुराना है । दुर्ग की टैक्स्ट में **'बभूव'** शब्द मौजूद नहीं । **'कुशिको राजा'** केवल इतना ही पाठ है । आगे चल कर **'ऋषिर्निर्भाको बभूव'** [निरु० १०।५] यह पाठ है । यह सारा का सारा पाठ दुर्ग टैक्स्ट में नहीं है । तीसरा स्थल है—**'कुरुङ्गो राजा बभूव'** [निरु० ६।२२] यह पाठ दुर्ग में तो है, पर स्कन्द में नहीं है । इन बातों को देखकर सहज में ही मेरी बात माननी पड़ जायगी । हां साहब, प्रतीत तो यही होता है कि यह पाठ पीछे से मिलाया गया है ।

निरुक्तकार स्वयं लिखते हैं—**'ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान-संयुक्ता'** [निरुक्त १०।१०]। इसका सीधा सा अर्थ है—मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषि की कहने के लिये आख्यान में संयुक्त प्रीति होती है । दूसरे अध्याय में यास्क लिखते हैं—

'तत्को वृत्रः । मेघ इति नैरुक्ताः । त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः । अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते । तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति ।' [निरु० २।१६] ।

उपमार्थ यह आख्यान है । महात्मा अरविन्द घोष भी वेद में आध्यात्मिक इतिहास बतलाते हैं । इतिहास तीन प्रकार का है—आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक । यह इतिहास प्राकृतिक घटना को स्टोरीमात्र है । त्वष्टा=सूर्य, उसका पुत्र मेघ=त्वाष्ट्र । कुमारिल और शबर ने वहां

अर्थ किये हैं, जो स्वामी दयानन्द ने किये हैं। ऋषियों की परिपाटी के विरुद्ध अर्थों को तोड़ सकता हूं। आर्य लोग वेद में इतिहास नहीं मानते। बौद्ध तथा योरोपियनै लोग मानते हैं।

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी—वेद में इतिहास मानने से स्वामी दयानन्द जी के विरुद्ध होने से आर्यसमाज का सत्यानाश होगा। यह सब नास्तिकता है, वेद को तिलाञ्जलि देना है।

श्री ठाकुर अमर सिंह जी—वेद मन्त्र के तो कई अर्थ हो गये हैं। किसी ग्रन्थ को पढ़ते वक्त उसका उपक्रम तथा उपसंहार भी देखना चाहिये। सारे निरुक्त को पढ़ जाने के बाद स्पष्ट प्रतीत होता है कि जहां इतिहास की गंध है, वहां निरुक्तकार कह देते हैं—**'तत्रेतिहासमाचक्षते'**, **'इत्यैतिहासिका'**; **'इतिहासपक्षे इति'**, इस प्रकार से कह देते हैं, और अपना मत पृथक् भी दिखा देते हैं। इससे प्रतीत होता है कि यास्क को इतिहासपक्ष कदापि अभीष्ट नहीं। ऐसा उनका अभ्यास है कि वह उनका पक्ष दे जाते हैं।

पं० राजा राम जी ने अपने निरुक्त-भाष्य में दुर्गाचार्य को कोट Quate करते हुए लिखा है। सरमा और देवशुनी के संवाद में इस प्रकार से लिखा है—इतिहासपक्ष में पणियों [द्वारा] चुराई गोवों का पता लगाने के लिए इन्द्र से भेजी देवशुनी जब पणियों के पुर में पहुंची, तब पणियों ने उससे पूछा, इस पक्ष में रसा अन्तरिक्ष की एक नदी है। नैरुक्त पक्ष में सरमा वाक् है। देर पीछे मेघ का शब्द सुनकर उससे कहा है (दुर्गाचार्य) पृ० ५००, पं० रा० रा० भाष्य। इसी तरह जान लेना चाहिये कि इतिहास नहीं है, वैसे ही है जैसा कल्पित कहानी कथा करने वाले उपदेशक कहा करते हैं। उसमें सर्वकालीन क्रियाओं का प्रयोग करते हैं। उनको कोई सत्य नहीं कहता। इसी तरह यहां भी कल्पित ही जानना चाहिये। 'कुरुङ्ग' का इतिहास ग्रन्थ किसी ग्रन्थ में से निकालकर दिखलाइये। जितने भी इतिहास ग्रन्थ मिलते हैं, उनमें इसका इतिहास नहीं मिलता। इसलिये यह कल्पित है।

आर्ष्टिषेणो देवापि पर लिखा है—**'कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः'** [निरु० २।१०], परन्तु महाभारत में जो कथा आई है, वहां पर यह कहीं नहीं लिखा कि देवापि और शान्तनु ऋष्टिषेण के पुत्र थे। साथ ही यह तीन भाई थे, दो नहीं। महाभारत शल्य पर्व में देवापि नाम क्षत्रिय राजा ब्राह्मण हो गया था, वह सतयुग का था। वहां भी यह कथा नहीं है। यह सब इतिहासाभास है, इतिहास नहीं।

'हस्त' और 'श्मशान' का प्रवृत्ति-निमित्त बतलाता हूं—जहां केवल शरीर सोता है, वह 'श्मशान' होता है। बिस्तरे पर तो जीवसंयुक्त शरीर सोता है, अतः वह श्मशान नहीं हो सकता। हस्त के बिना तलवार नहीं चल सकती, हस्त ही से मारा जाता है। अतः तलवार का नाम हस्त नहीं। अथर्ववेद का० १८। सू० ३ में एक मन्त्र आया है—

"कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥" [अथर्व १८।३।१५]

इस मन्त्र में ऋषियों के नाम हैं। राजाराम जी! आपके अनुसार इसका यही अर्थ हुआ कि सब ऋषि हमारी रक्षा करें। हे महाराज! इनका प्रवृत्ति-निमित्त और व्युत्पत्ति-निमित्त क्या है? वह तो सब मर गये, अब इस वक्त हमारी रक्षा किस तरह करेंगे? या यह मानना पड़ेगा कि यह मन्त्र उसी समय के लिये था, इस समय व्यर्थ है।

अथर्ववेद के पांचवें काण्ड में एक मन्त्र आया है -

"नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे ।

मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥ [अथर्व ५।१८।१]

इसका भाष्य करते हुए पं० राजाराम जी लिखते हैं—'हे मनुष्यों के मालिक ! देवताओं ने तुझे यह खाने के लिये नहीं दी है। हे राजन्य (शासक वंश के) ! मत ब्राह्मण की गौ को खाने की इच्छा कर, जो खाने के योग्य नहीं है। अर्थापत्ति से निकलता है कि—'ब्राह्मण की गौवें न मारें, तथा क्षत्रियादि की मारें।' यदि कोई मुसलमान प्रश्न करे, तो इसका जवाब क्या होगा ? गौ का अर्थ पृथिवी ही कर देते, तो कुछ अर्थ ठीक भी हो जाता। वेद का गौरव रखना दोनों का कर्तव्य है। आप बतलावें कि आपके अर्थ में कौनसा गौरव है ? और सौन्दर्य भी कुछ नहीं। वास्तव में यह इतिहासाभास है, इतिहास नहीं।

श्री पं० वासुदेव जी—जब तक यह समझ में न आवे कि अर्थ किस तरह होता है, यास्क की शैली क्या है, तब तक भ्रान्ति हो सकती है। '**कुरुङ्ग**' संज्ञा शब्द की व्युत्पत्ति की है। यास्क अन्य स्थलों में भी संज्ञा शब्दों की व्युत्पत्ति करता है। '**शवतिर्गतिकर्मा कम्बोजेष्वेव भाष्यते । कम्बोजाः कम्बलभोजाः कमनीयभोजा वा**'। [निरु० २।२] 'कम्बोज' देशविशेष की संज्ञा है, फिर भी व्युत्पत्ति की गई है। सायण ने भी इसे कोट (Quate) किया है। किसी पाठ को प्रक्षिप्त कहना वीकैस्ट weakest युक्ति होती है। पूना के राजवाड़े को भी ऐसी पुस्तक नहीं मिली, जिसमें यह पाठ न हो।

निरुक्त का अर्थ समझने के लिये प्रक्रिया समझ लेनी चाहिये। निरुक्ति अर्थ बतलाने के नहीं होती। व्युत्पत्ति-निमित्त तथा प्रवृत्ति-निमित्त पृथक्-पृथक् होता है। निघण्टु में '**इत्येकविंशतिः पृथिवीनामधेयानि**' आदि कहने से ही अर्थ निश्चित हो गया। यास्क का काम केवल निरुक्ति देना ही है। गौ अश्व आदि के विषय में निरुक्त तथा दुर्गाचार्य भी स्वीकार करते हैं कि इसमें लोक ही कारण है, जो-जो चलेगा उसे गौ नहीं कहते। यास्क कहता है—'**लोकं पृच्छ**'। हम नहीं कहते कि 'गौः' का एक ही अर्थ है, किन्तु अनेकार्थ भी होते हैं—जैसे "**गौरिति पृथिव्या नामधेयम्**" पृथिवी अर्थ पूर्व विद्यमान है, फिर व्युत्पत्ति करते हैं, कल्पना नहीं करते। यदि इसका ठीक समाधान किया जाय, तो अच्छा है। '**अर्थभेदे व्युत्पत्तिभेदः**' अर्थ भिन्न होने पर व्युत्पत्ति भिन्न होती है। जैसे—'**गच्छतीति गौः**' सबको गौ नहीं कहा जाता। **तक्षा**—जो भी लकड़ी काटने लगे, सभी को तक्षा नहीं कहते। मुझे 'तक्षा' नहीं कहते, बढ़ई को ही तक्षा कहते हैं। व्युत्पत्ति अर्थ ही के अनुसार होती है। '**अर्थनित्यः परीक्षेत**', '**योऽर्थो यस्य शब्दस्य लोकेऽस्ति, स तस्य प्रवृत्ति-निमित्तः**'। '**रूढित्वं च धातजत्वं च विप्रतिषिद्धम्**'। रूढि भी नैरुक्तों के मत में धातुज है। रूढि प्रसिद्धि को कहते हैं। आप रूढित्व और धातुजत्व को Contradictory समझते हैं, किन्तु एक शब्द रूढि होता हुआ भी धातुज हो सकता है, यह नैरुक्तों का सिद्धान्त है।

आपने कहा कि दुर्ग की टैक्स्ट से सारा निरुक्त निकाला जा सकता है। उससे दुर्ग के पास होनेवाले निरुक्त को बना सकते हैं, यास्क के निरुक्त को नहीं। आपने कहा कि दुर्ग अपने समय के

हर एक शब्द की टीका करता है, और प्रतीक देता है। परन्तु यह बात नहीं, कई जगह पर वह पाठ नहीं देता और अर्थ दे देता है। जैसे निरुक्त में पाठ आता है—'**पञ्चजना मम होत्रं जुषध्वम्**' [निरु० ३।८], इस मन्त्र में "**निषादः कस्मात्? निषदनो भवति निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः**"। दुर्ग ने '**निषदनो भवति**' पाठ नहीं दिया, किन्तु व्याख्या की है—'**निषद्य निषद्य हन्तीति**'। इसी तरह निरुक्त ३।६; ६।२२; ६।३२ में दुर्ग कई शब्द छोड़ गया है, किन्तु यास्क देता है। इसलिये दुर्ग एक-एक वर्ण के लिये प्रामाणिक नहीं माना जा सकता। ऐसा कहना केवल साहसमात्र ही है।

पाणिनि के फेल होने पर जो कहा गया है कि '**कुशङ्ग**' की पृषोदरादि से सिद्धि होती है। पृषोदरादि से निरुक्तविद्या प्रारम्भ होती है, जहां आपने यह लक्षण उठाया कि आप निरुक्त की शरण आते हैं। जहां से आगे लक्षण न बन सके, वहां एक लक्षण बना दिया। कात्यायनादि ने भी तो कई-कई बातों का निरास किया है। पाणिनि हमारे पूज्य हैं। मैं फेल शब्द वापस लेता हूं। निर्वचन व्युत्पत्ति तथा अर्थ विलक्षण है। '**व्युत्पत्तिभेदेऽर्थभेदः**' यह प्रक्रिया समझ लेनी चाहिये। अर्थ के भेद हो जाने पर व्युत्पत्ति भेद भी हो जावे। यास्क का निर्वचन प्रधान है।

श्री पं० बुद्धदेव जी—शब्द का प्रधान अर्थ एक ही होता है, यह आपका पक्ष है। आप बतायें शिरः शब्द का मुख्य अर्थ क्या है? [इस पर श्री पं० विश्वबन्धु जी तथा श्री पं० राजाराम जी ने सिर पर हाथ रख कर कहा कि यही मुख्यार्थ है।] निरुक्तकार ने 'शिर' का अर्थ क्या किया है? 'शिरः' शब्द का निर्वचन करते हुए यास्क लिखते हैं - '**अपि वा शिर आदित्यो भवति, यदनुशेते सर्वाणि भूतादि, मध्ये चैषां तिष्ठति**" [निरु० ४।१३]। आगे चल कर लिखते हैं - "**इदमपि इतरच्छिर एतस्मादेव, समाश्रितान्येतदिन्द्रियाणि भवन्ति**" [निरु० ४।१३]। इससे यह स्पष्ट है कि यहां पर आदित्य अर्थ मुख्य है, और सिर अर्थ गौण है। इसी तरह '**सर्प**' पर लिखते हैं - **अयमपीतरोऽहिरेतस्मादेव**' [निरु० २।१७]। और '**गौ**' पर लिखते हैं– '**अथापि पशु[नामेह भव]त्येतस्मादेव**' [निरु० २।५]। क्या मुख्यार्थ यह हुए, या जो प्रसिद्ध हैं? यह यास्क की शैली है। मनु ने लिखा है कि—

> '**सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।**
> **वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥**' [मनु० १।२१]

वेद से लेकर ही सब नाम रखे गये हैं। यदि मनु को प्रमाण नहीं मानते, तो वेद का प्रमाण लीजिये—

"**देवो देवानां गुह्यानि नामान्याविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे**"। ऋ० ६।६५।३॥

यहां बताया है कि तमाम चीजों के नाम परमात्मा ने बताये हैं। मुख्य अर्थ तो वेद में प्रतिपादन किया गया है, लौकिक नाम उससे लेकर रखे गये हैं। निरुक्तकार का यह तरीका है कि वैदिक शब्दों का निर्वचन देकर लौकिक शब्दों पर आते हैं। नैगम काण्ड का प्रयोजन यही

[दर्शाना] है कि 'जहा' [आदि शब्द अनेकार्थ हैं]¹ गौ के कई अर्थ होते हैं। आप कहते हैं कि सब चलते हैं, सबको गौ नहीं कहते। विशेषण तथा कार्य को देख कर अर्थ हो जायगा। 'कुरुङ्ग' विशेषण था, वहां नाम का सन्देह हो सकता है। बतला दिया कि कुरुङ्ग राजा ही लेना।

कल तो आप कहते थे कि यास्क को अर्थ अभिप्रेत नहीं, पर आज आप स्वीकार करते हैं कि अर्थभेद होने से व्युत्पत्ति-भेद हो सकता है। 'पुरीष' का अर्थ शतपथ ने दिया है—"दक्षिणा वै पुरीषम्" [श० ८।७।४।१५] "ज्योतिर्वै पुरीषम्", लोक में यह शब्द मलवाची प्रसिद्ध है। अब आप बतायें कि कौनसा अर्थ प्रधान है? 'अश्व' का अर्थ शतपथ में 'वीर्य' लिखा है—"वीर्यं वै अश्वः" [श० २।१।४।२३]; "क्षत्रं वै अश्वः" [श० १३।२।२।१५]। उमर भर वेद पढ़ पढ़ा कर और इतना स्वाध्याय करने पर भी आपको 'तुर्वश' शब्द का अर्थ नहीं आया, जबकि निघण्टु में स्पष्ट मनुष्य-पर्य्यायों में पढ़ा है।

यह तो पण्डित जी ने सिद्ध कर दिया कि 'बभूव' पाठ ही नहीं है। यदि हो भी, तो जैसे रामायण महाभारत में कवि लोग बहुधा प्रयोग कर देते हैं, वैसे ही यहां पर भी समझ लीजिये। जैसे—'ददृशे', गमिष्ये', यहां पर आत्मनेपद तथा इट् कैसे होगा? कहना पड़ेगा कि छान्दस प्रयोग है। महाभाष्यकार 'सज्जन्ते' प्रयोग करते हैं। ऋषि लोग वैदिक शब्दों का प्रयोग करते हुए पुण्य समझते हैं। 'तत्करोति तदाचष्टे' में वर्तमान का प्रयोग दिया है, किन्तु भूत में भी 'अपपठत्' बन जाता है, काल अविवक्षित है। 'तस्यापत्यम्' [अ० ४।१।९२] से स्त्रीलिङ्ग तथा बहुवचन से प्रत्यय किस तरह होगा? कहा है—'छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति'। इसी तरह 'बभूव' भी छान्दस प्रयोग है। आप कहते हैं कि अर्थ प्रधान नहीं, यास्क का निर्वचन प्रधान है। पर यास्क आरम्भ में लिखते हैं कि—'अर्थनित्यः परीक्षेत' [नि० २।१]। 'कम्बोज' शब्द की व्युत्पत्ति इसलिये की है कि सर्वत्र ही संज्ञा नहीं होती है। जहां पर संज्ञा न हो, वहां पर व्युत्पत्ति कर लेनी। कम्बोज पहिले सामान्य नाम था, पीछे से रूढ़ हो गया। जैसे गणपति में गण का पति, और लड़के का नाम भी हो सकता है। पं० विश्वबन्धु जी 'देवताद्वन्द्वे च' [अ० ७।३।२१] वाली बात या तो सिद्ध करें, या गलती स्वीकार करें।

श्री पं० प्रियरत्न जी—'कुरुङ्गो राजा बभूव' पर मैंने चार प्रकार का समाधान कर दिया था। यह पाठ स्कन्द स्वामी ने दिया ही नहीं। पं० चारुदेव जी कहते हैं कि—निघण्टु में भी गौ पशु का वाचक नहीं दिया है। जहां निरुक्तकार को अभीष्ट होता है, वहां पर 'अयमपि पशुरेत-स्मादेव' [निरु० २।५] ऐसा लिख देता है। 'कुरुङ्ग' के विषय में भी इसी प्रकार लिखना चाहिये था, किन्तु नहीं लिखा। पं० राजाराम जी ने कहा था कि व्युत्पत्ति-निमित्त तथा प्रवृत्ति-निमित्त पृथक् होता है, धनपति उदाहरण दिया था। जहां व्यक्ति का नाम हो वहां व्युत्पत्ति नहीं करनी चाहिये, परन्तु 'कुरुङ्ग' की व्युत्पत्ति की है। कुरुङ्ग [का] व्युत्पत्ति-निमित्त क्या है, यह बतलायें? इस तरह यास्क मूर्ख सिद्ध होता है।

१. यहां मूल में पाठ कुछ अस्पष्ट सा है। (सं०)

'राज्ञः' शब्द वेद में आया है। इसलिये उसका विशेषण बनाने के लिये 'कुरुङ्ग' शब्द बताने के लिये कुरुङ्ग शब्द लिख दिया है। अर्थ तो है, मैंने कर दिया था। वैदिक शब्द की तरह से 'बभूव' शब्द का प्रयोग कर दिया, तो आपत्ति क्या है? यदि निरुक्त में निर्वचन ही प्रधान है, तो निरुक्त का प्रयोजन क्या है? निर्वचन की महत्ता तभी है, जब उससे अर्थ निकाला जा सके। 'आलस्यं मानसं मतम्'। वर्तमान काल का भवति प्रयोग होता है। 'पितरः स्मृताः' आदि स्थलों पर भूतकाल की अविवक्षा है। इसी तरह से यहां भी भूतकाल अविवक्षित है।

श्री पं० गुरुदत्त जी—मेरे अर्थ पर कोई आक्षेप नहीं किया गया, तो क्या मैं इस से यह समझलूं कि मेरा अर्थ अभिप्रेत है?

श्री पं० चारुदेव जी—हां मुझे तो अभिप्रेत है।

श्री पं० राजाराम जी—मैं तो प्रकृत विषय पर ही कहूंगा। पं० आर्यमुनि जी ने ब्रह्मा की व्युत्पत्ति और प्रवृत्ति निमित्त के विषय में पूछा था। यह तो आपको दिखलाना चाहिये कि प्रवृत्ति और व्युत्पत्ति पृथक् होने से क्या शंका होती है? मैंने व्युत्पत्ति तथा प्रवृत्ति निमित्त का भेद दिखा दिया। अब यह काम आपका है कि आप सिद्ध करें कि यह दोनों एक हैं। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि यह दोनों सर्वथा पृथक्-पृथक् हों। कहीं दोनों भिन्न होते हैं, कहीं एक भी हो जाते हैं। मैं यह नहीं कहता कि शब्दों के असंख्यात अर्थ है। नानार्थ भी नियत होते हैं, उसमें स्वतन्त्रता नहीं होती कि चाहे सो करले।

आपने प्रश्न किया कि कुरुङ्ग के दादा परदादा कौन थे? महाराज! मेरा काम तो वेद में 'कुरुङ्ग' नाम आ गया, इतने से ही सिद्ध हो गया कि वेद में इतिहास मौजूद है। तथा निरुक्तकार ने भी लिख दिया। अब उनसे पूछना चाहिये कि उसके माता-पिता व दादा परदादा कौन थे? अब स्कन्द स्वामी को लीजिये, वह साफ लिखता है—**'कुरुङ्गनाम्नो राज्ञः'**। व्याख्या तो स्पष्ट कर दी, इस से तो साफ प्रकट होता है कि वह वेद में इतिहास मानता है कि—'कुरुङ्ग' राजा हुआ था। संज्ञा शब्द धातुज होने से अर्थ में स्वतन्त्र नहीं हो जाते, अर्थ नियत रहते हैं। पं० चारुदेव जी ने स्पष्ट कर दिया कि रूढि की भी व्युत्पत्ति होती है। पं० भगवद्दत्तजी ने कहा था कि **'सूनृता'** मेरी लड़की का नाम है। कोई पीछे से यह भी कह सकता है कि इसका वेद में इतिहास है। पर महाराज! ऐसा नहीं हो सकता। **'बभूव'** का अर्थ **'भवति'** कैसे है? **'नोधा ऋषिर्भवति'** एक स्थान में है, बभूव अन्यत्र में। यह कैसे सिद्ध हो गया कि **'बभूव'** का अर्थ **'भवति'** है? **'अर्थनित्यः परीक्षेत'** [निरु० २।१] प्रधानतया अर्थ की ही परीक्षा करता है, यह कहा गया था। अश्व शब्द की व्युत्पत्ति है—**'अश्नुते अध्वानं'** जो जो रास्ता चले अश्व नहीं कहा जाता। यास्क कहता है कि—लोक से पूछो। कुरुङ्ग शब्द यौगिक सिद्ध किया गया।

श्री पं० प्रियरत्न जी—यह आपको भ्रान्ति है। स्कन्द में मन्त्र के टुकड़े का अर्थ है। निरुक्त का पाठ नहीं दिया गया, ना ही उसका अर्थ किया गया है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—आप स्कन्द की टीका के विषय तब पूछ सकते हैं, जब स्कन्द का मूल निरुक्त छपा हो। टीका में यह शब्द विद्यमान है **'कुरुङ्गस्य नाम्नो राज्ञः'** तो फिर और क्या चाहिये? 'बभूव' का अर्थ भूतकालवाची मान लिया जाये, तो क्या हुआ? जब आप वेदमन्त्र को मानव-सृष्टि के आरम्भ में आविर्भूत हुआ मानते हैं, तो फिर कुरुङ्ग विशेषण विशिष्ट कोई हुआ होगा। यह वेद के शब्दों में कैसे आ गया। यदि ऐसा ही अर्थ किया जाये, तो वेद का कर्त्ता कोई मानना पड़ेगा।

'अथर्ववेद प्रातिशाख्य' वाली बात के विषय में मैं और पं० भगवद्दत्त जी दोनों मुलजिम हैं। हम इकट्ठे दोनों लाइब्रेरी में बैठ कर इस काम को किया करते थे। मैं एक मामला उठाता हूं—यह पं० भगवद्दत्त जी की किताब 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' पृ० ७० कुन्तापसूक्त अथर्व संहितान्तर्गत नहीं है। काण्ड २० सूक्त १२७ से १३६ तक को प्रक्षिप्त माना है। और कहा है कि ये ऋग्वेद की उस शाखा के सूक्त हैं, जो आजकल नहीं मिलती। परन्तु अजमेर की संहिता में छपे हुए हैं। न तुम्हारा अथर्ववेद सुरक्षित है, न ऋग्वेद।

ठाकुर अमरसिंह जी ने कहा कि 'देवापि' का इतिहास कहीं नहीं मिलता। मैं यहां बतला देना चाहता हूं कि यहां इतिहास की Conception 20th Centuy की नहीं, यहां तो केवल प्रोपर नेम Proper Name आ जाय, वह इतिहास है। आप वेद की तरफ क्यों नहीं जाते? ऋग्वेद १०।६८।८ में यह मन्त्र आया है—**'यं त्वा देवापिः शुशुचानो अग्न आर्ष्टिषेणो मनुष्य समीधे'**। इसका शब्दार्थ है--'हे अग्नि! जिस तुझ की उपासना की है मनुष्य ऋष्टिषेण का पुत्र देवापि'। आर्ष्टिषेण देवापि [के साथ मनुष्य] शब्द पढ़ा है कि आप वृष्टि बरसावें।

अब मैं Pet Theory of Bhagvatdatta विशेष्यविशेषणवाद पर आता हूं। एक जगह वह पृथिवी का अर्थ जमीन तथा दूसरी जगह विस्तृत जो तुम कर रहे हो, वही ठीक है। परन्तु जहां पर थ्यूरी बना कर सिद्धान्त निश्चित करते हैं, वहां पर भूल हो जाती है। भाषाशास्त्र बड़ा गहन है। विशेषणवाचक शब्द यौगिक होता है। किसी भाषा का भेद किसी के वश में नहीं। कोई मनुष्य भाषा का नियम बनाया नहीं करता। दस-दस पांच पांच मील पर भाषा बदल जाया करती है। जैसे संस्कृत का 'मत्स्य' 'मच्छ' बन जाता है। 'हस्त' हाथ हो जाता है। बच्चा च को ज बोलता है, और ट को ठ यह, क्यों है? यह हम नहीं जानते? We are only rear Keepers as we must be.

एक दो कारण इसके हो सकते हैं। सृष्टि नियम इकट्ठे करो, फिर कोई सिद्धान्त निर्माण करो। खट्टा सन्तरा, यहां पर खट्टा तुर्श के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। परन्तु खट्टा ले आओ, इसमें खट्टा विशेष्य है। इसी खट्टे का अचार, यह खट्टा बड़ा खट्टा है, इस वाक्य में खट्टा विशेषण भी है और विशेष्य भी। मिट्ठा- मिट्ठा रायता यहां मिट्ठा विशेषण है। मिट्ठा मिट्ठा इसमें मिट्ठा विशेषण भी है विशेष्य भी। लाल कपड़ा--इसमें लाल विशेषण है, और लाल एक रत्न भी होता है। चिट्टा---सफेद को कहते हैं, जैसे चिट्टा कपड़ा, और जैसे चिट्टा आंख में पड़ गया और चिट्टा पक्षी विशेष भी होता है,

यह विशेष्य वाची है। बड़ा—बड़ा कम्बल इसमें बड़ा विशेषण है, तथा, बड़ा बड़ा (दहीवाला) में विशेषण विशेष्य दोनों हैं। काला नीला—शब्द अभी तक विशेषण के रूप में ही हैं, विशेष्य नहीं। गौ का अर्थ पशु विशेष है, परन्तु यह बड़ा गौ है इसमें यह शब्द सरल अर्थ में है। शोभा शब्द का अर्थ सरल भी है गुण्डा भी। बन्द शब्द एक भूषण विशेष भी है, और कुश्ती का एक दाव भी होता है। तथा इस प्रकार भी प्रयुक्त होता है, जैसे हवा बन्द है। इसमें यह सिद्ध है कोई शब्द 'अवनि, मही' आदि कहीं विशेषण के तौर पर प्रयुक्त हो गया, तो इससे यह निगम नहीं बना सकते कि यह शब्द उस भाषा में विशेष्यपरक नहीं हो सकता। अर्थ नियत है।

निरुक्त प्रक्रिया का भेद खूब खुला। मैं पं० चारुदेव जी तथा पं० राजाराम जी से सहमत हूं। किसी के एक अर्थ किसी के ज्यादा अर्थ निकल आये। जितने भी किये गये सब भिन्न भिन्न हैं, कोई किसी से नहीं मिलते। मैं तो यह कहता हूं कि अनन्त अर्थ नहीं मिलते। मैं तो यह कहता हूं कि अनन्त अर्थ नहीं हो सकते, कोई न कोई नियामक होना चाहिये। अर्थ मर्जी आये जो कर ले, सो हम नहीं मानते। यह गलत है कि जिसमें गमन पाया जाये वह 'गौ' है। यदि यह माना जाय कि अनन्त अर्थ होते हैं, तो निघण्टु व्यर्थ हो जायगा, क्योंकि उसमें 'ऋत्विङ्' नाम नियत कर दिये हैं। इसी तरह से नदीनामान्येतानि' बतलाया है। निघण्टु का होना भी साबित करता है कि निघण्टु के अर्थ नियत हैं, अनियन्त्रित नहीं।

अब ब्राह्मणों के विषय में सुनिये—"बहुभक्तिवादीनि हि ब्राह्मणानि" ब्राह्मण तो भक्तिवाद है, इसलिये भी अनन्त अर्थ नहीं हो सकता। पं० प्रियरत्न जी बतलावें कि शताश्वं का अर्थ सौ घोड़े किस तरह है ? शताश्वं का स्वर लगावें, बहुव्रीहिसमाप्स में पूर्वपदप्रकृतिस्वर होना है। यौगिक प्रक्रिया के अनुसार तो इस मन्त्र को कुल्हाड़े तथा शराब पर भी लगा सकता हूं। मैं कुल्हाड़ापरक अर्थ करके अर्थ बताता हूं। देवता—'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः'। कृन्तन् गच्छतीति कुरुङ्गः परशु। दानं= काटना, 'दो अवखण्डने', इस धातु से बना लीजिये। स्तुतिः यथार्थस्वरूपनिरूपणम्। कुल्हाड़े के काटने का स्वरूप वर्णन। तुर्वशेषु शीघ्र वशीभूत करनेवालों में। 'रातिषु' 'रा दाने' काटना, काटने की क्रियाओं के विषय में। 'दिविष्टिष' दिवः एषणेषु जीत की उत्कट इच्छाओं के समय में सुभगस्य अच्छे प्रकारभाग्यशाली राज्ञः बड़ा चमकदार त्वेषस्य लसलस करता हुआ अत्यन्त प्रकाशमान कुरुङ्गस्य परशु की राधः 'राध हिंसायां' 'असुन्' प्रत्ययः, राधः हिंसा स्थूरं स्थूलं बड़ा भारी अमन्महि शताश्वं शत शातने काटनेवाली अश्वः जो चीरती हुई जाने वाली का अमन्महि हम उनका ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं।

यह अर्थ मैंने Reduction absdicion के तौर पर किये हैं। इसी तरह शराब का अर्थ कर सकता हूं। किसी के सारे अर्थ गलत नहीं हैं, परन्तु priority of meaning नहीं। कोई नियन्त्रित अर्थ नहीं हो सकते, अनन्त अर्थ हो जायेंगे। इस मन्त्र का अर्थ जो राजाराम जी ने कया है, उसे मैं मानता हूं।

महात्मा जी—कुरुङ्ग के विषय में हमारी पण्डित सभा अर्थ निश्चित कर दे, जो हम बाहर साफ बता सकें। या पण्डित विचार कर कह देवें कि इस मन्त्र का यह अर्थ है। निरुक्त के इस

स्थल पर भी दोनों पक्ष के पण्डित अपना-अपना विचार दे देवें। एक बात आप से कह देता हूं कि आपस की बातों का प्रभाव शास्त्रार्थ में अच्छा नहीं पड़ा करता। पण्डित लोग मिल कर इस मन्त्र तथा निरुक्त के इस स्थल पर विचार करके बतला दें कि कौनसा अर्थ ठीक है, और कौनसा गलत है।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी---आपके वेदार्थ की कसौटी क्या है ? क्या स्वामी जी की कसौटी से वेदार्थ करें, या कसौटी भी अभी निश्चित करनी है ? यदि ऐसा है, तो कसौटी का निर्णय आवश्यक है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी---निरुक्त का स्थल अनुक्रमणी में लिखा है---'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः'। वेद-मन्त्र में 'कुरुङ्गस्य राज्ञः' है, निरुक्त में 'कुरुङ्गो राजा बभूव' है। यदि बभूव का भवति अर्थ होगा, तो कुरुङ्ग राजा का पर्यायवाची हो जायगा। बृहद्देवता ६।४४ में---

"ऐन्द्राणामिह सूक्तानामुत्तमस्योत्तमे तृचे।
दानं राज्ञः कुरुङ्गस्य स्थूरं राध इति स्तुतम्" ॥

हमको इतिहास नहीं मिला, किन्तु बृहद्देवताकार शौनक मुनि लिख रहे हैं। यदि कहें, तो केवल कथनमात्र से सब प्रक्षिप्त नहीं माना जा सकता। वेद में तो नाम भी आजायें, तो मुश्किल है। निरुक्त का अर्थ---'शब्द धातुज हैं यह प्रायोवाद है। अणु की सिद्धि 'अनु' उपसर्ग से प्रत्यय लोप करके यास्क ने की है—

"अणुरनु स्थवीयांसमुपसर्गो लुप्तनामकरणो यथा सम्प्रति"। [निरु० ६।२२]

बभूव का भवति अर्थ वेद में हो सकता है। यास्क तो वैदिक भाषा नहीं बोल रहा। इसलिये बभूव का अर्थ 'भवति' नहीं हो सकता। 'कुत्स ऋषिर्भवति' 'नोधा ऋषिर्भवति' आप को इन्हें पुरुष-विशेष मानना पड़ेगा। इससे तो आपके सिर इतिहास आता है। इसी तरह से कुरुङ्ग भी राजा हो चुका है। नाम कैसे रखा, यह तो पता नहीं। कृन्ततेः मान लो। क्योंकि वह राजा था, ऐसे गुणों से कल्पना कर लो। कुरुङ्ग और तुर्वश दो शब्द ऐसे हैं, जो इतिहाससूचक हैं। अभी तो कुरुङ्ग ही चल रहा है, तुर्वश तो उठाया ही नहीं। 'तुर्वश' शब्द पर बड़ा विवाद है। पं० राजाराम जी ने इसीलिये इसका अर्थ नहीं किया। यदि इन दोनों का अर्थ निश्चय हो, तो मैं बदल सकता हूं।

महात्मा जी---अब आप बतायें कि 'कुरुङ्ग' ऐतिहासिक है या नहीं ? और आप मन्त्रार्थ ठीक मानते हैं या नहीं ?

श्री पं० विश्वबन्धु जी---मैं अभी तक नहीं मानता कि ऐतिहासिक नहीं, ग्रन्थों के आधार पर ऐतिहासिक समझता हूं। मैं तो विचार के लिये उपस्थित हूं। 'तुर्वश शब्द पर बड़ा झगड़ा है, अभी तो विचार चलना चाहिये।

पण्डित सभा की चौथी बैठक १६।५।३१ के सायंकाल

श्री प्रधान जी—अब इस मन्त्र पर काफी विचार हो चुका है। आप दोनों पक्ष के पण्डित इसका अपना अपना अर्थ लिख कर दे देवें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—अब अर्थ लिखने के लिये क्यों मजबूर किया जा रहा है? जब कि पहिले लिखकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार नहीं किया गया।

श्री प्रधान जी—दोनों पक्षों का अर्थ रिकार्ड रहने में विचार में तथा निश्चय में सरलता होगी।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मन्त्रों का अर्थ तभी दिया जा सकता है, जबकि निश्चय हो जावे। और यौगिक प्रक्रिया का भी निश्चय हो जाना चाहिये। Point पाइन्ट यह है कि क्या एक शब्द के एक ही अर्थ होते हैं, या मर्जी के अनुसार? अर्थात् निरुक्त प्रक्रिया को क्या अभिप्रेत है? दूसरा—शब्दों में जहां यास्कादि इतिहास मानते हैं, उनका क्या निर्णय है?

श्री प्रधान जी—मैं मन्त्र का अर्थ आवश्यक समझता हूं।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—हम मन्त्र का अर्थ पहले देने को तैयार नहीं हैं।

श्री प्रधान जी—फिर आपको दूसरों के अर्थों को Criticize करने का अधिकार नहीं होगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—Criticize तो हम करेंगे।

श्री प्रधान जी—यह ठीक नहीं है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—यौगिक प्रक्रिया का रिकार्ड पहले होना चाहिये।

श्री प्रधान जी—आप मन्त्र का अर्थ लिख कर तथा हस्ताक्षर करके दे देवें। आप इस पर अमल करेंगे या नहीं? मेरे पास दूसरे पक्ष वालों का किया हुआ अर्थ पण्डितों के हस्ताक्षर [सहित] आ गया है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मुझे इस पालिसी की समझ नहीं आती। बहुत अच्छा, बना हम भी देते हैं, परन्तु हम हस्ताक्षर करने के लिये तैयार नहीं हैं। जो गन्ध अर्थ की प्रतीत हुई है, वह हम दे देंगे।

श्री प्रधान जी—बहुत अच्छा, बिना ही हस्ताक्षरों के दे देवें। वह आपके पक्ष की ओर से समझ लिया जावेगा। पं० विश्वबन्धु जी! क्या यह सब की ओर से है? क्या पं० चारुदेव जी इसे स्वीकार करते हैं?

श्री पं० चारुदेव जी—मुझे कुछ पता नहीं।

श्री प्रधान जी—फिर यह पं० राजाराम जी तथा पं० विश्व बन्धु जी की ओर से है?

दोनों—हां जी।

श्री नारायण स्वामी जी –(दोनों पक्षों का अर्थ पढ़ कर सुनाते हैं)—

पं० विश्वबन्धु जी के पक्ष का अर्थ—

मन्त्रार्थ (ऋ० ८।४।१९) –'स्वर्ग की इच्छा से की जानेवाली क्रियाओं में तुर्वशों में जो दान है, उन दानों में प्रकाशयुक्त उत्तम धनवाले कुरुङ्ग राजा के सैकड़ों घोड़ोंवाले धन को हमने बड़ा माना है।'

पं० ब्रह्मदत्त जी का मन्त्रार्थ—

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ ऋ० ८।४।१९॥

अन्वयः त्वेषस्य सुभगस्य कुरुङ्गस्य राज्ञो दिविष्टिषु रातिषु तुर्वशेषु शताश्वं स्थूरं राधो ऽमन्महि ॥

पदार्थः—(त्वेषस्य) 'त्विष दीप्तौ' इत्येतस्माद्धातोः पचाद्यचि त्वेषः, तस्य त्वेषस्य दीप्तिमतः। 'चितोऽन्तोदात्तः' इत्यन्तोदात्तत्वम्। (सुभगस्य) 'भज सेवायाम्' इत्येतस्माद्धातोः '**पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण**' [अ० ३।३।११८] इति घप्रत्यये **चजोः कु घिण्यतोः** [अ० ७।३।५२] इति कुत्वे [=भगः], भज्यते सेव्यते धनार्थिभिः, सुष्ठु भोगो यस्येति सुभगः, तस्य सुभगस्य। '**क्त्वादयश्च**' [अ० ६।२।११७] इत्युत्तरपदाद्युदात्तत्वम्, शोभनगुणयुक्तस्य इत्यर्थः। (कुरुङ्गस्य) कुरून् क्रूरान् ऋत्विजो वा गच्छति प्राप्नोति जयति विनाशयति वा यः स कुरुङ्गः। '**डोऽन्यत्रापि दृश्यते**' इति गमेर्डः, 'पृषोदरादिः' दुष्टविनाशकस्य। **गतिकारकोपपदात् कृत्**' [अ० ६।२।१३८] इत्युत्तरपदप्रकृतिस्वरत्वेनान्तोदात्तत्वम्। सुपोऽनुदात्तत्वे '**उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः**' [अ० ८।४।६५] इत्यन्तस्वरितत्वम्। (राज्ञः) 'राज दीप्तौ' यद्वा 'राजति ऐश्वर्यकर्मा अर्चतिकर्मा वा' राजते दीप्तिमान् ऐश्वर्ययुक्तो भवति। '**कनिन् युवृषितक्षि**'० (उ० १।१५६)। तत्र प्रमाणम् -'राजानो वै राष्ट्रभृतस्ते हि राष्ट्राणि बिभ्रति'। श० ९।४।१।१; 'राजा हि कं भुवनानामभि श्रीः। ऋ० १।९८।१; '**उग्रन्तादित्यः सर्वेषां ज्योतिषां राजा**'। नि० २।२१। (दिविष्टिषु) द्यौर्गम्यते यया सा राज उत्तमक्रियासु। दिवो 'विच्' प्रत्ययो गुणाभावश्च। 'दिवि' शब्दोपपदादिषेर्गत्यर्थादिच्छार्थाद्वा करणे क्तिन्। दिवः सम्बन्धे इष्टिः ऐषणा यस्येति बहुव्रीहौ समासे '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' [अ० ६।२।१] इत्याद्युदात्तत्वम्। (रातिषु) 'रातिर्दानकर्मा' विविधदानक्रियासु। '**बसेस्तिः**' इति बाहुलकात्तिः प्रत्ययो भावे। प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम्। (तुर्वशेषु) मनुष्येषु। 'तूर त्वरणहिंसनयोः' अस्मात् क्विप् प्रत्ययः, तूः अश्नोतेश्च पचाद्यचि तूर्णमश्नुते, पृषोदरादित्वात् मध्योदात्तत्वम्, यद्वा चतुर्षु धर्मार्थकाममोक्षेषु वश एषामिति चतुर्वशः, चकारलोपेन 'तुर्वशः' इति देवराजयज्वा (शताश्वं) असङ्ख्यातं ऐश्वर्यमनन्तबलं वा, असङ्ख्या अश्वा यस्येति तं शताश्वं '**वीर्यं वै अश्वः**'[श० २।१।४।२३]इति ब्राह्मणम्। '**महाशनो भवतीति वा**' (नि० ४।२३)। '**बहुव्रीहौ प्रकृत्या पूर्वपदम्**' [अ० ६।२।१] इति पूर्वपदान्तोदात्त्वम्। 'पङ्क्तिविंशति०' [अ०५।१।५८] इत्यादिना तप्रत्ययविधानात्। (स्थूरं) महत्। प्रत्ययस्वरेणान्तोदात्तत्वम्। (राधः) धनम्। 'राध-साध संसिद्धौ' असुन्प्रत्ययः। राध्नुवन्ति साध्नुवन्ति धर्मादिपदार्थान् इति स्कन्दस्वामी। '**ञित्यादि-**

ङ्गित्यम्' [अ० ६।१।१६१] इत्याद्युदात्तत्वम् । (ग्रमन्महि) स्तुमः, 'तिङ्ङतिङः' [अ० ८।१।२८] इति निघातः ।

[ग्रर्थः—] (क) दीप्तिमान् उत्तम ऐश्वर्ययुक्त दुष्टविनाशक जगदीश्वर की उत्तम क्रियाओं, ग्रनेकविध दानों, तथा ग्रनेकाश्वादियुक्त महान् धन की हम स्तुति करें ।।

दीप्तिमतः उत्तमैश्वर्ययुक्तस्य दुष्टविनाशकस्य जगदीश्वरस्योत्तमक्रियासु ग्रनेकाश्वयुक्तं महद्धनं वयं स्तुमः ।।

(ख) शत्रु-बल पर आक्रमण करनेवाले, दीप्तिमान् शोभनैश्वर्ययुक्त राजा की स्वर्गादि क्रियाओं में प्रजा में दिये हुये दान का, जिसमें ग्रसङ्ख्य घोड़ों का भी दान किया गया, उसको हम बहुत मानते हैं ।

(Sd.) गुरुदत्त (Sd.) प्रियरत्न (Sd.) बुद्धदेव (Sd.) धर्मेन्द्रनाथ (Sd.) भगवद्दत्त (Sd.) देवप्रकाश (Sd.) रामलाल (Sd.) आर्यमुनि (Sd.) शङ्करदेव (Sd.) ब्रह्मदत्त जिज्ञासु (Sd.) ग्रमरसिंह ।

श्री प्रधान जी—अब प्रश्न यह है कि मन्त्र-ग्रर्थ ग्रा गया है । ग्रब निरुक्त के फिकरे का अर्थ भी लिख दिया जाय, तब ठीक है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं आठ दश प्रश्न करता हूं, उनका एक-एक मिनट में उत्तर आ जाय । इसी प्रकार ग्राप भी कर लें, मैं उत्तर दूंगा । फिर मत लिखवा लिया जायगा ।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—हमें स्वीकार है ।

श्री पं० राजाराम जी—सब बातें बारी-बारी से ग्रा जायेंगी । अब नये प्रश्नों की क्या ग्राव-श्यकता है ? जब निरुक्त-प्रक्रिया का विचार चला हुग्रा है, तब इस नये ढंग की क्या ग्रावश्यकता है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं केवल इतिहास के सम्बन्ध में प्रश्न करूंगा ।

श्री पं० राजाराम जी मैं भी इतिहास के सम्बन्ध में करूंगा ।

श्री पं० भगवद्दत्त जी- हां ग्राप करें । यह जो पं० विश्वबन्धु जी कहते हैं कि मनमाने अर्थ किये जा सकते हैं, वैसे कुल्हाड़ेवाले अर्थ नहीं हो सकते । वेदार्थ केवल निरुक्त के ग्राधार पर ही होता, तो यह बात बलवाली होती । ब्राह्मणों में वाच्यार्थ को छोड़कर दूसरा अर्थ करते हैं । **'कर्मण्यकर्म यः पश्येत्'** में शङ्कराचार्य ने कर्म का अर्थ संसार किया है, ग्रौर रामानुज ने ब्रह्म किया है । प्रवृत्ति-निमित्त ग्रौर व्युत्पत्ति-निमित्त मैंने पं० राजाराम जी से पूछा था, उन्होंने मेरे ही सिर पर मढ़ दिया । यह नहीं होता कि जितने अर्थ हों, उन्हें बुरा समझा जाय । मेरे पक्ष में तो **'बृंहतीति ब्रह्म'** व्युत्पत्ति-निमित्त है । इसका अर्थ परमात्मा प्रवृत्ति-निमित्त है । निरुक्त तथा ऋग्वेद में ब्रह्म का अर्थ क्या है ?

ग्रापके कुल्हाड़ेवाले ग्रर्थ ऐसे ही हैं, जैसे देवीप्रसाद महामहोपाध्याय ने कहा था कि मैं गीता से मद्यमांस सिद्ध कर देता हूं—**'मद्या जी मां नमस्कुरु'** । यह अर्थ हमारे सिर नहीं मढ़े जा सकते,

आपके सिर मढ़े जा सकते हैं। वेदान्त 'अत्ता चराचरग्रहणात्' [वेदान्त १।२।९] में व्यास ने अत्ता ग्रहणात् लिखा है, न तु भक्षणात्। यहां पर व्यास ने तथा शङ्कर ने प्रसिद्धि का परित्याग कर दिया है। आपके कुल्हाड़ेवाले अर्थ में तो दर्शन तथा उपनिषद् सारे छोड़ देने पड़ते हैं। सायण ने भी व्युत्पत्तिवाले अर्थ को मुख्य माना है। जैसे—'अश्वि न वयो वक्ष सः'। 'आ तू न इन्द्र कौशिक' [ऋग्वेद १।१०।११] पर सायण ने लिखा है कि विश्वामित्र के दादा के मन में ख्याल पैदा हुआ कि मेरे इन्द्र के जैसा पुत्र हो। तब इन्द्र उसके यहां पुत्र रूप से पैदा हुआ—

> दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे।
> अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः॥" ऋग्वेद १।१५८।६॥

इसमें दीर्घतमा जो ममता का पुत्र था, जो अविद्या से पैदा हुआ था, इसका अर्थ सायण ने किया है कि वह मामतेय दशवें युग में बूढ़ा हुआ, इत्यादि। यदि मामतेय शब्द से सारी दीर्घतमा की कहानी निकाली जा सकती है, तो कोई आस्था नहीं रहती। श्री पं० विश्वबन्धु जी (बीच में)—आप 'अपां' का अर्थ क्या करते हैं? श्री पं० भगवद्दत्त जी—'अपां' का अर्थ है—कर्म। दसवें युग का अर्थ आप क्या करते हैं? वाच्यार्थ का परित्याग किये बिना यहां आप का अर्थ नहीं हो सकता। यदि आप यहां पर लक्ष्यार्थ करते हैं, तो 'कुरुङ्ग' का ऐसा अर्थ करने से क्यों कतराते हैं? आपके अर्थ तो इसी प्रकार के हैं कि 'मदीनाः स्याम शरदः शतम्' कि मैं मदीने में सौ वर्ष रहूं। आपके ढंग पर सारी शंकर की प्रक्रिया, सारी व्यास की, सारी आर्य फिलासफी छोड़नी पड़ेगी। पक्षता क्या है? "सन्दिग्धसाध्यवान्" पक्ष की स्थापना वाद-कथा में होती है। आपकी यह विचार-कथा किस शास्त्र की है?

श्री पं० विश्वबन्धु जी—कालिजों को पढ़ाई में यह कार्य नहीं पढ़ाई जाती है। जो विचार चला है, वह बड़ा जरूरी है। वेदार्थ करने की मूल प्रक्रिया क्या है, तथा नैरुक्त प्रक्रिया क्या है? पंडित जी ने जो कुछ कहा है, वह बहुत सा मेरे पक्ष को पुष्ट करता है। यह प्रक्रिया तय होनी चाहिये कि कहां क्या वाच्यार्थ है। **'अत्ता चराचरग्रहणात्'** [वेदान्त १।२।९] अत्ता ग्रहण से न कि भक्षण से, इसमें कोई नियम होना चाहिये। यह नहीं कि 'अपां' का अर्थ कर्म कर दिया, जो कि स्वर के विरुद्ध है। यह सारे वैदिक साहित्य में नहीं आया। कभी देखा, या वैसे ही वेदार्थ करने लग पड़े। 'अकर्म' शब्द यदि वेद में होता, तब उसके इतने अर्थ न हो सकते। यह गीता में आया है, और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने भिन्न-भिन्न समयों में अर्थ किये हैं।

'अत्ता' का अर्थ खानेवाला नहीं होता। लक्ष्यार्थ 'गंगायां घोषः' के ढंग पर करना चाहिये। यह सारा Interpretation का ढंग Unscientific है। शंकर ने किया, स्वामी जी ने किया, औरों ने किया, परन्तु इतने मात्र से प्रमाण नहीं है। मैं इन बातों को Unscientific मानता हूं। मैं इन सबकी Authority को Contest करता हूं। युग-युगान्तर में सब के मुख से एक ही वेदार्थ निकला, यह बात ठीक प्रतीत नहीं होती। **'को नाम समन्वयः श्रूयते'**? ऋषियों के मुख से वेदार्थ एक ही निकला, यह मैं नहीं मानता।

मैं मानता हूं कि शब्द का व्यङ्ग्यार्थ भी होता है वाच्यार्थ भी, पर विचार तो वाच्यार्थ पर करने की आवश्यकता है । पदार्थ पर विचार नहीं, पर भावार्थ पर विचार है। **'अश्वमेध'** का वाच्यार्थ क्या है ? अश्वमेध का वाच्यार्थ राष्ट्र नहीं । **'यज्ञो वै विष्णुः'** इसमें यज्ञ विष्णु का पर्यायवाची नहीं है । यह जब ऋषि आत्म-जीवन में घुसना चाहता है, तब वह विष्णु के भाव को धारण करता है । 'ब्रह्म' शब्द का वाच्यार्थ क्या है या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता, किन्तु स्तोतार्थ में अवश्य आया है । मैं इस विषय में दो चार दिन विचार कर सकता हूं । ब्रह्म का व्युत्पत्ति के तरीके से बड़ा अर्थ भी हो सकता है, मोटा भो हो सकता है । 'बृह' धातु से 'ब्रह्म' शब्द बनता है, परन्तु पीपल या वट के वृक्ष को ब्रह्म नहीं कह सकते । शब्द पहिले है, अर्थ पहिले है, निरुक्तादि व्याकरण की व्युत्पत्तियां बाद में हैं । यही तो हम कहते हैं कि अर्थ अनियन्त्रित नहीं होने चाहियें, कोई नियम होना चाहिये । जहां जो मर्जी आये, वह नहीं लगा सकते । अनन्त अर्थवाद नैरुक्त प्रक्रिया के विरुद्ध है, जैसे ब्रह्म शब्द हिमालय समुद्रादि अर्थों में नहीं हो सकता ।

श्री पं० भगवद्दत्तजी—यहां वितण्डा नहीं होगा, वाद होगा । विचार का सब से अच्छा तरीका यह है कि मैं एक प्रश्न करके बैठ जाऊंगा । आप उसका उत्तर दे देवें । मैं आपको विश्वास दिला दूंगा कि स्वामी दयानन्द शङ्कर कुमारिल स्कन्दादि एक अटूट शृंखला हैं । चाहे सिद्धान्तों की Details में भेद हो । मेरा प्रश्न है कि क्या मन्त्र भी भिन्न-भिन्न समय में बने हैं ?

श्री पं० राजाराम जी—मैं तो पहिले ही कहता था कि एक-एक आदमी बोले, और विचार चले, यह बात स्वीकार नहीं हुई । अब जो बात चली हुई है, वह आप छोड़ रहे हैं । क्या अब घबराहट होने लगी ? मेरा प्रश्न है—**'कुरुङ्गो राजा बभूव'** क्या इससे इतिहास सिद्ध होता है या नहीं ? इसका उत्तर दें । ६ स्थल निश्चित किये थे, उन्हें छोड़ना नहीं चाहिये ।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मेरे प्रश्न का उत्तर दें ।

श्री पं० राजाराम जी—इसका विषय के साथ सम्बन्ध नहीं है ।

श्री प्रधान जी—इसका मन्त्रार्थ के प्रकृत विषय से सम्बन्ध है ।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—हिस्टारिक Historic तरीके का आज निश्चय करना है । मैंने उपनिषद् के सम्बन्ध में कहा था, मन्त्रों के विषय में नहीं कहा था ।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं Definite Statment करता हूं--मन्त्रों के काल से लौकिक भाषा मौजूद है ।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—प्रधान जी ! यह प्रकरण से विरुद्ध है । जैसे मैंने प्रातः कहा था कि लौकिक भाषा कहां तक जाती है, मैंने खूब विचारा है । मैं यदि उसे पेश करूं, तो निरुक्त का प्रकरण बीच में ही रह जायगा । मैं सिद्ध कर सकता हूं कि वेद में लौकिक भाषा मौजूद है । मुझे इस बात पर चैलेंज न करें । पं० भगवद्दत्त जी ने नाराशंसी तथा गाथा के आधार पर थ्यूरी बांधी है । मैं इसके लिये तैयार हूं, और उनकी पुस्तक का सफावार खण्डन लिख चुका हूं ।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—यदि इस बात का सम्बन्ध नहीं, तो सुबह खट्टा मिट्ठा पर इतना समय किसलिये खर्च किया गया था ? प्रधान जी Ruling दें।

श्री पं० राजाराम जी—मुझे यह विश्वास था कि बड़े शुद्ध हृदय के साथ एक-एक बात का निश्चय होगा। और एक-एक स्थल लेकर विचार चलता रहता, तो भी ठीक था। अगर यह [बात] साबित हो जाती कि क्या यास्काचार्य वेद में इतिहास मानता है या नहीं, तो हम सब आर्यसमाज के लिये एक सिद्धान्त स्थिर कर देते। और इन बातों का आर्यसमाज की तरफ से एक ही उत्तर होता। या यदि इतिहासवाला अर्थ होता, तो भी हम एक ही नतीजे पर पहुंचते। वेदार्थ के लिये कोई नियम है, या नहीं ? उन छः स्थलों में से एक स्थल पर भी विचार समाप्त नहीं हुआ। अब ये नये-नये विषय क्यों छेड़े जा रहे हैं ? यदि प्रधान जी कहें कि उन ६ स्थलों को छोड़ दिया जाये, तब नया विचार चल सकता है।

श्री प्रधान जी—मेरी कोशिश यह रही है कि दोनों पक्ष निरुक्त के स्थल तथा मन्त्र का अर्थ भी लिख कर दे देवें। परन्तु जब भी आप से कहा गया, आपकी तरफ से यह हुआ कि हम यह अर्थ देने के लिये तैयार नहीं हैं। आप केवल आक्षेप करना चाहते हैं। कल आप दोनों पक्ष चाहते थे कि निरुक्त की (जनरल पालिसी) General Policy का निश्चय हो जाना चाहिये। मैंने कहा कि इसके लिये भी समय दे दिया जायगा।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—प्रधान जी ईमानदारी तो यही है कि मैंने निरुक्त के तीन बड़े-बड़े आचार्यों की पंक्तियां पेश की थीं, उनका निश्चय हो जाय।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी—हां, यह ठीक है।

श्री पं० राजाराम जी—प्रधान जी ! मैं यह समझना चाहता हूं कि निरुक्तकार [वेद में] इतिहास मानता है, या नहीं।

श्री प्रधान जी—पण्डित जी ! आप उन दोनों आचार्यों की पंक्तियों को पढ़ दें।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं उन पंक्तियों को पढ़ता हूं—

"एवमाख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कर्तव्या। एष शास्त्रे सिद्धान्तः। तथा च वक्ष्यति—तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः, इत्यादि। मध्यमं च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्ताः। रात्रिरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते इति। औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः। परमार्थेन नित्यपक्ष इति सिद्धम्।" स्कन्द पृष्ठ ७८ ॥

"एवं नैरुक्तपक्षे योजना। औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, नित्यत्व-विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एवेति नैरुक्तानां सिद्धान्तः।" निरुक्तसमुच्चय पृ० १४३ (हस्तलिखित) ॥

"यः कश्चिद् आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वा अर्थं आख्यायते दिष्टया दितार्थावभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः"। दुर्ग० पृष्ठ ८५८ ॥

श्री पं० राजाराम जी—'विष्टचु दितावभासनार्थम्' का आपने क्या अर्थ किया है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—आप बाकी दो का उत्तर दे देवें, मैं इसका भी अर्थ लिखवा दूंगा।

श्री पं० राजाराम जी—स्कन्द स्वामी क्या कहता है, प्रारम्भ से लेता हूं—[भाग १] पृष्ठ ६६—

"अगस्त्यो हविर्निर्वापकाले इन्द्राय हविर्निरूप्य सम्प्रदानकाले मरुद्भ्यः सम्प्रदित्सांचकार। सम्प्रदित्सा सम्यक् प्रदातुमिच्छा, तया तत्पूर्वकत्वात्सम्प्रदानं लक्ष्यते मरुद्भ्यः सम्प्रददौ इत्यर्थः।" उस वक्त इन्द्र ने वहां आकर विलाप किया। **"यस्यामृचि विचिकित्सार्थीयस्तामुदाहरिष्यन्नर्थाभिव्यक्त्यर्थमस्याः पूर्वं तावदितिहासमाचष्टे—अगस्त्य इन्द्राय इत्यादि।"**

अब इस इतिहास की बाबत पहिले विचार हो जाय, फिर उस पर हो जाय। अपने मतलब की बात कह देना, और शेष को प्रक्षिप्त कहकर छोड़ देना ठीक नहीं है।

श्री लाला देवीचन्द जी—पहिले पण्डित भगवद्दत्त जी ने स्कन्द ऋषि का प्रमाण दिया, उसका उत्तर दें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—लाला देवीचन्द क्यों दखल देते हैं ?

श्री लाला देवीचन्द जी—I have been invited so I am autho'ised to spe.ık.

श्री प्रधान जी—उनको भी इन्वाइट Invit: किया गया है। जैसा आप दखल देते हैं, वैसे वह भी कह सकते हैं।

श्री पं० राजाराम जी—जो बात मैंने पेश की थी, वह कथा प्रारम्भ में पाई जाती है। क्रम से विचार होना चाहिये।

श्री प्रधान जी—जो बात पं० भगवद्दत्त ने कही है, उसका उत्तर दे देवें।

श्री पं० राजाराम जी—जो बात मैंने कही है, वह बात क्योंकि पुस्तक में पहिले आई है, उसका उत्तर पहिले आना चाहिये। आरम्भ से लेते जाइये, सारी पुस्तक को एक क्रम से लेते जाइये। या पं० भगवद्दत्त जी सारी पुस्तक को मानें, या सर्वथा न मानें।

श्री प्रधान जी—आपका मतलब है कि या तो सारी पुस्तक को मान कर Liscussin हो, नहीं तो न हो ?

श्री पं० विश्वबन्धु जी—हमारे लिये मुख्य साध्य वेद और वेदार्थ है। हम सब चाहते हैं कि वेद में लौकिक इतिहास सिद्ध न हो। मध्यकाल के लेखकों ने अर्थ के अनर्थ किये। आज आर्यसमाज की विद्वत्परिषद् में स्कन्द दुर्ग वररुचि, जो कि उसी काल के हैं, उन्हें पेश किया जा रहा है। हम किसी को प्रमाण नहीं मानते, केवल वेद को मानते हैं। स्कन्द की प्रतिज्ञा है कि निरुक्त में जितने इतिहास आये हैं, सब औपचारिक हैं। सायण की भी इसी तरह की प्रतिज्ञा है। इस प्रतिज्ञा को नहीं

स्कन्द स्वामी, नाहीं सायण और दुर्गाचार्य निभा सके हैं। इनके कथन में बदतो व्याघात दोष है। इसलिये इनको प्रमाण नहीं माना जा सकता।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—महात्मा जी का धन्यवाद है कि इतनी Fightings के बाद आज मुझे यह उत्तर मिला है कि—'स्कन्दादि की प्रतिज्ञा है, यह उनकी Pious wish थी, परन्तु वह इसे सिद्ध नहीं कर सके, इस प्रतिज्ञा को निभा न सके।' परन्तु स्कन्द केवल दावा ही नहीं करता, बल्कि दलील भी देता है—"**नित्यत्व-विरोधात्**"। उसने Further सबूत दिया है—

"**तथा च वक्ष्यति-तत्को वृत्रः ? मेघ इति नैरुक्ताः इति। मध्यमं च माध्यमिकां च वाचमिति नैरुक्ताः। राविरादित्यस्योदयेऽन्तर्धीयते, इति औपचारिको मन्त्रेष्वाख्यानसमयः, परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्।**" [स्कन्द निरुक्त पृष्ठ ७८]

अब पं० राजाराम जी कहते हैं कि स्कन्द शुरू से लिया जाये। परन्तु अपनी बार निरुक्त के शुरू के ८ पाठ छोड़ कर नवमी जगह '**कुरुङ्ग**' पर क्यों कूद गये ? "**अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरुप्य मरुद्भ्यः सम्प्रदित्साञ्चकार**" [स्कन्द निरुक्त भाग १, पृष्ठ ६६]—अगस्त्य ने इन्द्र के लिये हवि देने का विचार किया था, पीछे से मरुतों के लिये हवि दे दी। क्या वे आदमी हैं ? ऋ० ८।२६।२१—'**त्वष्टुर्जामातरम्**' त्वष्टा का जमाई ऐसा अर्थ किया है। '**अग्नेस्त्रयो ज्यायांसो भ्रातर**...**ध्यासन्**'। अब पं० जी इस बात का उत्तर दे देवें कि मरुत् आदमी भी हैं, तो मेरी हार हो गई।

श्री पं० राजाराम जी—पण्डित जी ने कहा कि सारा निरुक्त छोड़कर आगे के स्थल क्यों रखे ? उसका उत्तर यह है कि उन स्थलों से बात सरलता से स्पष्ट हो जाती है। जो बात पं० जी ने पेश की है, वह स्कन्द की प्रतिज्ञा है। यदि उसके आधार पर माना जाये कि वह इतिहास नहीं मानता, तब मानना पड़ेगा कि सायण भी इतिहास नहीं मानता। क्योंकि उसने भी भूमिका में ऐसी ही प्रतिज्ञा की है। मैं शुरू से चलता हूं—'**अगस्त्य इन्द्राय हविर्निरुप्य मरुद्भ्यः संप्रदित्सांचकार**' में यास्क के इतिहास शब्द न लिखने पर भी स्कन्द ने स्वयं लिख दिया—'**इतिहासमाचष्टे**'। आगे वह और कुछ कहे, तो वह बदतो व्याघात दोष हुआ। इसलिये वह प्रमाण नहीं। स्कन्द मरुतों को क्या मानता है ? देवता मानता है, अधिष्ठातृ मानता है, या परमात्मा मानता है। मैं चाहे कुछ मानूं।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैंने पूछा था कि आप बतायें कि क्या मरुत् मनुष्य हैं ?

श्री पं० राजाराम जी—मैं इसका अर्थ नहीं करूंगा। 'स्कन्द' इसको ऐसा मानता है—इन्द्र मध्यमस्थानी देवता है, चेतन है, मरुद् भी एक देवता है, अगस्त्य एक ऋषि है। यहां पर वह इतिहास मान रहा है। आगे चल कर वह यह कह देवे कि इतिहास नहीं, ऐसे आचार्य को हम प्रमाण मानने के लिये तैयार नहीं हैं। वह पिण्डदानादि भी मानता है, ऐसी प्रतिज्ञा तो सायण ने भी की है।

श्री प्रधान जी—नित्य पक्ष क्या है ?

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—२१ जगह स्कन्द ने नित्यपक्ष, और १० जगह औपचारिक अर्थ किया है।

श्री पं० राजाराम जी—नित्य पक्ष मीमांसकों का है, यज्ञों के साथ सम्बन्ध भी नित्य है। वह ईश्वर को भी नहीं मानते, केवल यज्ञों को लेकर प्रवृत्त होते हैं। दूसरा नित्य पक्ष यह है कि हर सृष्टि में सब कुछ इसी तरह से होता है, यह वेदान्त का पक्ष है। वेद का गौरव बढ़ाने के लिये वेद में इतिहास न सिद्ध होने से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। बहुत से मनुष्य इतिहास मानते हैं। मैं नित्य-पक्ष मानता हूं। वे आचार्य अपनी प्रतिज्ञा में फेल हुये हैं। मैं चाहता हूं कि आर्यसमाज का पक्ष कामयाब पक्ष होना चाहिये।

श्री प्रधान जी—यह तब हो सकता है, जब आप भी कोई बात पेश करें। केवल दूसरों का खण्डन ही करते जायें, तब कैसे हो सकता है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—पण्डित जी ने कहा कि एक मीमांसावालों का नित्य पक्ष है, और वे फेल हुये। स्वामी जी ने प्रक्रिया खोल दी है। ६।७ शब्द मंत्रावाणी के हैं, जिनके अर्थ किसी को पता नहीं—'अरेण्वराट्, बालपितरस्य, आपतन्तानाम्' इनका अर्थ किसी कोष में नहीं मिलता। स्वामी जी कहते हैं—हजारों वर्षों से वेद का अर्थ भूल गया था, इसलिये प्रकरण, ब्राह्मण, निर्वचन तथा व्याकरणादि अङ्ग उपाङ्गों की सहायता से अर्थ का निश्चय करना चाहिये। इसी [आधार पर] कुरुङ्गादि शब्दों का अर्थ भी (सेटल) Settle किया जायेगा। यदि यह फर्ज कर लिया जाय कि वह फेल हुये, Mat-rial आदि की कमी से शायद वह न निभा सके हों, परन्तु उनका सिद्धान्त वही है।

स्वामी जी कहते हैं कि यास्क का सिद्धान्त है कि वेद नित्य है। "**कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे**" [निरुक्त १।२]—'**कर्मणामग्निहोत्राद्यश्वमेधान्तानां शिल्पविद्यासाधनानां च सम्पत्तिः सम्पन्नता संयोगो भवति येन स मन्त्रो वेदे देवताशब्देन गृह्यते**' [ऋ० भा० भू० वेदविषयविचार प्रकरण]। आपने यह कहा है कि जैमिनी के काल से यह मत चला, परन्तु यह मत सृष्टि के आदि से चला आ रहा है। मनु ब्राह्मणग्रन्थों से पहिले का है, उसने लिखा है—'**सर्वेषां तु नामानि**'०। मनु० १।२१ इत्यादि। यास्क लिखता है '**तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**'। [निरुक्त २।१६]। तथा शतपथ में भी लिखा है—'**नैतदस्ति यद्दैवासुरमिति**'। हजारों ब्राह्मण ग्रन्थ मौजूद थे, जिन्होंने इतिहास का नित्य अर्थ किया॥

पण्डित सभा की पांचवीं बैठक, २०-५-३१ प्रातःकाल

श्री प्रधान जी—जो कल मामला आया है, उस पर बहुत कुछ कहा जा सकता है, इससे संक्षेप से चलना चाहिये। अब मन्त्र के विषय में बोलना चाहिये।

श्री महता रामचन्द्र जी—दो दिन की कार्यवाही सब ने सुनी। हम इसलिये इकट्ठे हुये हैं कि आर्य सिद्धान्तों की बाधाओं का निश्चित उत्तर सोचा जाये। आर्य सिद्धान्तों में वेद में इतिहास नहीं माना जाता। जो यहां इकट्ठे हुये हैं, उनमें से एक खासी तादाद ने यह कहा है कि वेद में इतिहास नहीं है। दूसरों ने भी कहा है कि हमारी भी इच्छा है कि वेद में इतिहास सिद्ध न हो।

इस समय 'कुरङ्ग' और 'तुर्वश' शब्द पर झगड़ा है। एक ओर से 'शत्रुओं पर आक्रमण करनेवाले' अर्थ भी किये गये हैं, दूसरी ओर से कहा गया है कि मनमाने और अनियन्त्रित [अर्थ से वेदों का कोई महत्व] नहीं रहता। मेरे जैसे विश्वासी के लिये तो निरुक्त चाहे जो कुछ कहता रहे, पर हमें प्रेमपूर्वक समझना चाहिये। जहां तक तो निरुक्त हमारी सहायता करता है, वहां तक उसे मानना चाहिये। पर यदि निरुक्त वेद और वैदिक सिद्धान्त के विरुद्ध जावे, तो हमें उसे छोड़ देना चाहिये।

निरुक्त के विषय में एक पक्ष ने नैरुक्तों के दो-तीन प्रमाण दिये हैं। हम बाहिर फिरनेवालों के लिये वे काफी हैं, परन्तु आपस में विचार करने के लिये पूरा आर्यत्व होना चाहिये। दोनों ओर से पुष्ट प्रमाणों को Ignore नहीं करना चाहिये। दोनों पक्षों को ख्याल होना चाहिये कि वे दोनों आर्य हैं। दूसरा अखिलानन्द और राजनारायण नहीं है, किन्तु पं० भगवद्दत्त और पं० राजाराम हैं।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—हम स्वीकार करते हैं।

श्री पं० गुरुदत्त जी—मैं किसी को विपक्षी ख्याल करके उत्तर देने के लिये नहीं खड़ा हुआ हूं। जहां-जहां भी हमें इतिहास का आभास नजर आता हो, उस पर विचार करने का यत्न करें। पंडित जी ने तीन बातें कही थीं—(१) अजमेर के छपे वेद में 'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः' देवता छपा है। (२) अनुक्रमणी में और बृहद्देवता में भी यही है। (३) निरुक्त में 'कुरङ्गो राजा बभूव' लिखा है। इन सब बातों से सिद्ध है कि वेद में अनित्य इतिहास है। हम इस पर 'कात्यायन' को देखते हैं कि वह क्या सम्मति देता है ? क्या वह अनित्य इतिहास मानता है या और कुछ ? दो ही प्रकार के शब्द हैं कि जिनसे यह ख्याल हो सकता है—वह हैं देवता और ऋषि। ऋग्वेद में जो देवता और ऋषि आते हैं, [उनमें ऋषि] ३५५ हैं, और देवता २०९ के लगभग हैं। इन ऋषियों से यास्कादि को क्या अभिप्रेत है, इस पर प्रकाश डाल देने से अधिक तूल देना आवश्यक न होगा। मेरी लिस्ट में जो देवता दुबारा आये हैं, उनका वर्णन नहीं किया गया है। मुझे यही पता लगा है कि 'कात्यायन' कहते हैं कि ऋषि तीन प्रकार के हैं—शतर्चि, मध्यम और क्षुद्रसूक्त महासूक्त। इसका प्रमाण—ऐतरेय आरण्यक [२।२।१, २], पृष्ठ ८१०—

'एष इमं लोकमभ्यार्चत् पुरुषरूपेण य एष तपति, प्राणो वाव तद् अभ्यार्चत्, प्राणो ह्येष य एष तपति, तं शतं वर्षाण्यभ्यार्चत्, तस्मात् शतं वर्षाणि पुरुषायुषो भवन्ति, तं यच्छतं वर्षाण्यभ्यार्चत् तस्मात् शतर्चिनः तस्माच्छतर्चिनः इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। स इदं सर्वं मध्यतो दधे यदिदं किञ्च, स यदिदं [सर्वं] मध्यतो दधे यदिदं किञ्च तस्मान्माध्यमास्तस्मान् माध्यमा एतमेव सन्तम्। प्राणो वै गृत्सोऽपानो मदः, स यत्प्राणो गृत्सोऽपानो मदः तस्माद् गृत्समदः तस्माद् गृत्समदः इत्याचक्षते, एतमेव सन्तम्। तस्येदं विश्वं मित्रमासीत् यदिदं किञ्च, तद् यस्येदं विश्वं मित्रमासीद् यदिदं किञ्च तस्माद् विश्वामित्रः तस्माद् विश्वामित्र इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। तं देवा अब्रुवन् अयं वै नः सर्वेषां वाम इति तं यद्देवा अब्रुवन्नयं न सर्वेषां वाम इति तस्मात् वामदेवस्तस्माद् वामदेवः इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। स इदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वं पाप्मनोऽत्रायत यदिदं किञ्च तस्मादत्रयस्तस्मादत्रय इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। एष उ एव बिभ्रद्वाजः, प्रजा वै वाजस्ता एव बिभर्त्ति यद् बिभर्ति तस्माद् भरद्वाजस्तस्माद् भरद्वाज इत्याचक्षते एतमेव सन्तम्। तं देवा अब्रुवन्नयं वै नः

सर्वेषां वसिष्ठ इति, तं यद्वा श्रवुवन्नयं वै नः सर्वेषां वसिष्ठ इति तस्माद् वसिष्ठस्तस्माद् वसिष्ठ इत्याचक्षते एतमेव सन्तम् । [स इदं सर्वमभि प्रागाद् यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वमभिप्रागाद् यदिदं किञ्च तस्मात् प्रगाथास्तस्मात्प्रगाथा इत्याचक्षते एतमेव सन्तम् ।] स इदं सर्वमभ्यपवयत यदिदं किञ्च, स यदिदं सर्वमभ्यपवयत् यदिदं किञ्च तस्मात् पावमानास्तस्मात् पावमाना इत्याचक्षते एतमेव सन्तम् । सोऽब्रवीदहमिदं सर्वमसानि यच्च क्षुद्रं यच्च महदिति, ते क्षुद्रसूक्ताश्चाभवन् महासूक्ताश्च तस्मात्क्षुद्रसूक्तास्तस्मात्क्षुद्रसूक्ता इत्याचक्षते एतमेव सन्तम् ।"

बृहदारण्यक उपनिषद् १।३।१६–२१ [में कहा है]—"सोऽयास्य आङ्गिरसोऽङ्गानां हि रसः ·········प्राणो हि वा अङ्गानां रसः, तस्माद्यस्मात्कस्माच्चाङ्गात् प्राण उत्क्रामति तदेव शुष्यति। एष हि वाङ्गानां रसः । एष उ एव बृहस्पतिः । वाग्वै बृहती तस्या एष पतिस्तस्मादु बृहस्पतिः। एष उ एव ब्रह्मणस्पतिः । वाग् वै ब्रह्म तस्या एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ।"

फिर बृहदारण्यकोपनिषद् [२।२।४] में कहा है—"इमावेव गोतमभरद्वाजौ, अयमेव गोतमः अयं भरद्वाजः, इमावेव विश्वामित्रजमदग्नी, अयमेव विश्वामित्र अयं जमदग्निः । इमावेव वसिष्ठ-कश्यपौ, अयमेव वसिष्ठः अयं कश्यपः । वागेवात्रिर्वाचा ह्यन्नमद्यते, अत्तिर्ह वै नामैतदत्रदत्रिरिति ।"

इसी तरह—"सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम् ।" नि० १२।३७ ॥

शतपथ के अष्टमकाण्ड के आरम्भ में—"प्राणो वै वसिष्ठः, मन्त्रो वै भरद्वाजः ऋषिः, श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः, वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः" । इन तमाम प्रमाणों से यह नतीजा निकलता है कि वेदमन्त्रों में जहां-जहां पर कोई नाम व्यक्तिविशेष का प्रतीत हो, तो वह प्राणादि का वाचक है ।

अब प्रश्न यह है कि ऋषियों का मन्त्र-दृष्टृत्व कैसे हुआ ? उदाहरण के लिये—"हिरण्यगर्भ समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम' [यजु० १३।४] का ऋषि भी 'हिरण्यगर्भ प्राजापत्य' है । "स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः । स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना" [ऋ० ५।५१।११] इसका ऋषि 'स्वस्ति' है । 'श्रद्धया अग्नि समिध्यते०' [ऋक् १०।१५१।१] इत्यादि का ऋषि 'श्रद्धा' है । 'य इमा विश्वा भुवनानि जुह्वत्०' [ऋक्० १०।८१।१ इत्यादि का ऋषि 'विश्वकर्मा भौवन' है । 'यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं०' [यजु० ३४।१] इत्यादि मन्त्रों का ऋषि भी 'शिवसङ्कल्प' है । इन उदाहरणों से सिद्ध है कि ये व्यक्तिविशेष नहीं हैं ।

यास्क भी—'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवुः, ते अवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः' [निरुक्त १।२०] इत्यादि । इनसे सिद्ध होता है कि या तो ये नाम उपाधिवाचक हैं, या प्राणादि के वाचक हैं । जिस ऋषि ने उन मन्त्रार्थों का साक्षात् किया, उनको यह डिग्री दी गई । उन्होंने सारा जीवन वेदाध्ययन में व्यतीत किया ।

यह सम्बन्धबोधक नहीं, अन्वर्थबोधक है । प्रमाण निरुक्त १०।२६—

"तत्रेतिहासमाचक्षते । विश्वकर्मा भौवनः सर्वमेधे सर्वाणि भूतानि जुहवाञ्चकार । स आत्मानमप्यन्ततो जुहवाञ्चकार ।"

इस पर दुर्ग लिखता है—

"यः कश्चिदाध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिको वार्थ आख्यायते विष्टप् वितार्थविभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते। स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः, तदर्थप्रतिपत्तृणामुपदेशपरत्वात्।……यथोदितमिदं वैदिकं कर्म सम्बन्धदर्शनेन यः सर्वं करोति, सर्वात्मकत्वात् सर्वस्य वैश्वकर्मणीमवस्थामात्मन्युन्नीय स यजमानो विश्वकर्मा भुवनानां भूताना[मात्मनि] होता भूतेषु चात्मानम्।" [दुर्गटीका पृष्ठ ८५८]

यहां पर भौवन विश्वकर्मा व्यक्तिविशेष नहीं। आगे चलकर फिर दुर्ग लिखता है—इस विषय में एक और प्रबल प्रमाण है—ऋषियों की सूची में नदी मत्स्य सर्प आदि को ऋषि माना गया है, इनका ऋषित्व कैसे ?

अब सवाल 'देवता-प्रकरण' का है। वेद में जहां अनित्य इतिहास की झलक दीखती है, उसके विषय में प्राचीन आचार्यों की सम्मति है कि साहित्य को अलंकृत करने के लिये रूपक आरोपादि अलङ्कार रचे गये हैं। वहां आरोप है, इतिहास नहीं। 'अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे' [ऋक् १०।१५५।१]। इसका शिरिम्बिठ ऋषि है। यास्क कहता है—"शिरिम्बिठो मेघ इति नैरुक्ताः।" निरुक्त ६।३०।

"मन्युरिन्द्रो मन्युरेवास देवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः।
मन्युं विश ईडते मानुषीर्याः पाहि नो मन्यो तपसा सजोषाः॥" ऋ० १०।८३।२॥

यहां मन्यु का चेतनवत् वर्णन है। इसी प्रकार—

"असुनीते मनो अस्मासु धारय जीवातवे सुप्रतिरा न आयुः।
रारन्धि नः सूर्यस्य सन्दृशि घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व॥" ऋक् १०।५९।५॥

इसमें भी असुनीति का चेतनवत् वर्णन किया है।

यह आरोप केवल वेद में ही नहीं बलिक ब्राह्मणग्रन्थों में भी पाया जाता है—"तं तपोऽब्रवीत्।
प्रजापते तपसा वै श्राम्यसि। अहमुवै तपोऽस्मि।" तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।४। यहां पर तप का
चेतनवत् वर्णन किया गया है। "तं श्रद्धाऽब्रवीत्। प्रजापते श्रद्धया वै श्राम्यसि। अहमु वै
श्रद्धास्मि"। यहां पर श्रद्धा का चेतनवत् वर्णन है। यह आरोप मन्त्र और ब्राह्मणों में ही नहीं है,
बल्कि संस्कृत-साहित्य में भी है—'रे चित्त चिन्तय चिरं चरणौ मुरारेः'; 'वयं तन्वान्वेशान् मधुकर
हतास्त्वं खलु कृती'। इसी प्रकार दूसरे स्थलों पर आरोप और रूपक है।

देवताओं के विषय में कात्यायन 'सर्वानुक्रमणी' नामक ग्रन्थ में कहते हैं—"एकैव वा
महानात्मा स सूर्य इत्याचक्षते……। तदुक्तमृषिणा—सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्चेति। तद्विभूतयोऽन्या
देवताः। तदप्येतदृचोक्तम्—इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरिति" [सर्वा० परिभाषा १४—२१]। यास्क
कहते हैं—'यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते, तद्दैवतः स मन्त्रो भवति'
[निरुक्त ७।१]। "महाभाग्याद् देवताया एकात्मा बहुधा स्तूयते" [निरुक्त ७।४]। अब इसको Limit

करते हैं। कोई ३३ करोड कहता है, कोई कितना। अतः यास्क कहते हैं—"तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः, अग्निः पृथिवीस्थानः, वायुर्वेन्द्रो वा अन्तरिक्षस्थानः सूर्यो द्युस्थानः' [निरुक्त ७।५]। अतः वह आगे कहते हैं—वेद मन्त्रों में रथ मुद्गर धनुष सारथि नदी सर्प आदि को देवता माना गया है— "आत्मैवैषां रथो भवत्यात्मा[इवः, आत्मा]आयुधम्,[आत्मेषवः, आत्मा सर्वं देवस्य।" [निरुक्त ७।४] जिस विषय का मन्त्रों में वर्णन है, वह-वह उसका 'देवता' है। वह व्यक्तिविशेष नहीं हैं, बल्कि विषय का द्योतन करनेवाले हैं।

इस बात पर जोर दिया जाता है कि यास्क अनित्य इतिहास मानता है। पण्डित जो नोट करें। निरुक्त २।१६—

"अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं विचरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥ [ऋक् १।३२।१०]

अपां च ज्योतिषश्च मिश्रीभावकर्मणो वर्षकर्म जायते। तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति।" [निरुक्त २।१६]

यहां पर सायण वृत्र से त्वष्टा का लड़का 'असुर' मतलब लेता है। परन्तु यास्क कहता है कि नहीं, यहां 'वृत्र' बादल हैं। "उपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति"। इसी बात को 'दुर्ग' और स्पष्ट करता है। वह एक और मन्त्र देता है—

"यदचरस्तन्वा वावृधानो बलानीन्द्र प्रब्रुवाणो जनेषु।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं ननु पुरा विवित्से॥" ऋक् १०।५४।२॥

मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः।······ऐतिहासिका नानारूपाणि उपप्रदर्शयन्तः सा अपि च तव मायैव।[1] किं कारणम्? नाद्य शत्रुस्तवास्ति प्रत्यनीकभूतो न नु पुरा नापि पुरा कश्चिदासीत्। यावद्वीर्यं किञ्चित्क्वचिदस्ति सर्वं तत्त्वमेव।·· एवमेतस्मिन्मन्त्रे मायामात्रत्वमेव युद्धमिति श्रूयते। विज्ञायते च तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरमिति"। [दुर्ग टीका पृष्ठ १७७-१७८]

वह तो कहता है कि तेरा तो कोई दुश्मन है ही नहीं, सब पराक्रम तेरा ही है। ना ही तेरे साथ कोई युद्ध करनेवाला है। "अहिवत्तु खलु मन्त्रवर्णा ब्राह्मणवादाश्च" [निरु० २।१६] अर्थात् मन्त्रों और ब्राह्मणों में जहां इतिहास की झलक प्रतीत हो, वहां 'अहि' अर्थात् वृत्र की तरह ही समझ लेना—तदुपयुपेक्षितव्यम्। नि० २ १०॥

"समुद्रः कस्मात्, समुद्द्रवन्त्यस्मादापः, समभिद्रवन्त्येनमापः, सम्मोदन्तेऽस्मिन् भूतानि, समुदको भवति समुनत्तीति वा तयोर्विभागः। तत्रेतिहासमाचक्षते— देवापिश्चार्ष्टिषेणश्च शन्तनुश्च कौरव्यौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कानीयानभिषेचयाञ्चक्रे। देवापिस्तपः प्रतिपेदे। ततः शन्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचुर्ब्राह्मणा अधर्मस्त्वया चरितः, ज्येष्ठं भ्रातरमन्तरित्याभिषेचितम्,

१. तस्मादेतदृषिणाभ्यनूक्तम्। न त्वं युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रो मघवन् कश्चनास्ति। मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रुं न नु पुरा युयुत्सऽ इति॥ शत० ११।१।६।१०॥

तस्मात्ते देवो न वर्षतीति । स शन्तनुर्देवापिं शिशिक्ष राज्येन । तमुवाच देवापिः पुरोहितस्तेऽसानि याजयानि च त्वेति ।" [निरु० २।१०]

इस पर दुर्ग पृष्ठ १६५ पर लिखता है–"मन्त्र-निदानद्वारेण धर्मोऽयमत्र दर्शितः । ज्येष्ठे तिष्ठति कनीयसो राज्य-प्राप्तिर्धर्मातिक्रमः, धर्मातिक्रमे च देवो न वर्षतीति । नैरुक्तास्तु ऋष्टिषेणो मध्यमः तदपत्यमयमग्निः पार्थिवः आर्ष्टिषेणो देवापिः स शन्तनवे सर्वस्मै यजमानाय इति योऽयम् । बृहस्पतिर्वाचस्पतिरिति मध्यमः । स्तनयित्नुलक्षणां वाचमित्यर्थः ।" [निरुक्त २।१२]

ऐतिहासिक पक्ष को रद्द करते हुए पण्डित राजाराम जी ने अपने निरुक्तानुवाद में लिखा है–"देवापि ही इस सूक्त का द्रष्टा ऋषि अपना निर्देश प्रथम पुरुष से और भूतकाल से कैसे करता है" ? वहां पर भी पं. राजारामजी ने दुर्ग को quote करते हुए लिखा है–"इसका यथाकथंचित् यह समाधान दुर्गाचार्य ने लिखा है कि जैसे [इस] कल्प में देवापि और शन्तनु हुए, वैसे इससे पूर्व कल्प में भी हुए । उसके अभिप्राय से इस देवापि का वचन है ।" प्रतीत होता है कि वह उसके साथ शायद सहमत नहीं ।

निरुक्त ३।११ में यास्क 'कुत्स' के विषय में कहता है–"वज्रनामानि उत्तराणि अष्टादश । ...... तत्र कुत्स इत्येतत् कृन्ततेः, ऋषिः कुत्सो भवति । कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः । अत्राप्यस्य वधकर्मैव भवति । तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघान ।" इस पर 'दुर्ग' लिखता है–"अत्रापि एतदृषौ वर्तमान-मभिधानमस्य ऋषेर्वधकर्मैव वधार्थसंयुक्तमेव स्यात् ।"

मैंने यास्क ब्राह्मणग्रन्थ और कात्यायन की सम्मति दी । अब औरों की देता हूं–वेदान्त शङ्कर भाष्य १।३।३०—

"ऋषीणां नामधेयानि याश्च मन्त्रेषु दृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।।"

वेदान्त शङ्करभाष्य १।३।२८–

"नामरूपे च भूतानां कर्मणां च प्रवर्तनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ।।"

वेदान्तसूत्र १।३।२८–"शब्द इति चेन्नातः प्रभावात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।" स्मृतावपि–स भूरिति व्याहरन् स भूमिमसृजत्"; "अनादि-निधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा । आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ।"

वेदान्त-भाष्य सूत्र १।३।३०–"समाननामरूपत्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च" पर शङ्कराचार्य ने निम्न प्रमाण दिये हैं–

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।। [ऋक् १०।१९०।३]

तेषां यानि कर्माणि प्राक् सृष्टया प्रतिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ।।

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माधर्मावृतानृते ।
तद्भाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्तस्य रोचते ॥

यथर्तावृतुलिंगानि नानारूपाणि पर्यये ।
दृश्यन्ते तानि तान्येव तथाभावा युगादिषु ॥

यथाभिमानिनोऽतीता तुल्यास्ते साम्प्रतैरिह ।
देवादेवं रतीतैर्हि रूपे नामभिरेव च ॥

जैमिनि [मी० १।१।२७–३१] चारवाकों के मत का खण्डन करते हुए पूर्वपक्ष में—'वेदांश्चैके सन्निकर्षं पुरुषाख्याः' कि वेदों के नाम काठकादि शाखाओं के नाम से, और 'अनित्यदर्शनाच्च' बानरादि नाम वेद में होने से वेद नित्य कैसे? इसका उत्तर देते हैं—"उक्तं तु शब्दपूर्वत्वं' आख्याप्रवचनात्', 'परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।" इस प्रकार इतिहास का खण्डन करते हैं। सायण उपोद्‍घात में कहता है—'एवमन्यत्राप्यूहनीयम् ।' मनु कहता है—

'सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक् ।
वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे ॥ [मनु० १।२१] ।

पाणिनि के दो सूत्र 'कृते ग्रन्थे' [अष्टा० ४।३।११६], 'तेन प्रोक्तम्' [अष्टा० ४।३।१०१] हैं। पं० राजाराम जी भी भूमिका में कहते हैं—"पहले सूत्र से यह बात सिद्ध होती थी, दूसरा सूत्र इसलिए दिया कि यह स्पष्ट हो कि ऋषि कर्ता नहीं प्रवक्ता हैं"। यह प्रमाण नास्तिकों के आगे चट्टान का काम देते हैं।

श्री पं० बुद्धदेव जी (मीरपुरी)[1]—यह प्रकरण इस ढंग का छिड़ गया है। मैंने आरम्भ में ही कहा था—"पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः।" आप कहते हैं कि हमारा कोई पक्ष नहीं, परन्तु ऋषि कहते हैं—"एकाधिकरणे पक्ष-प्रतिपक्ष……'। आपका पक्ष तो हुआ, आप मानें या न मानें। पक्ष के स्पष्ट न होने से यह सारी गड़बड़ है। उस मन्त्र के अर्थ हमने पेश किये। उन्हें आप काट न सके, तो आपने प्रवृत्तिनिमित्त और व्युत्पत्तिनिमित्त का झगड़ा चलाया है। इसलिये आप प्रतिज्ञान्तर निग्रहस्थान में आ गये। यह शास्त्रार्थ का ढंग नहीं है। इस तरह एक-एक का सम्बन्ध जोड़ने लगें, तो कभी निर्णय हो ही न सके। आप हमारे अर्थ का खण्डन करें, और अपना पक्ष देवें। आप किस भाषा और किस ग्रन्थ को मानते हैं?

जब हमने 'बभूव' का अर्थ 'भवति' किया था, तब हमने प्रमाण दिये थे कि ऋषि लोग रामायणादि में वैदिक प्रयोग किया करते थे। महाभाष्य में भी कहा है—'छन्दोवत्सूत्राणि भवन्ति' इसी तरह हमने निरुक्त के प्रमाण पेश किये। 'ऋषि कुत्सो भवति', 'च्यवन ऋषिर्भवति', 'नोधा ऋषिर्भवति' यहां तीनों स्थलों पर भूतकाल है। हमसे पूछा गया कि यहां भूतकाल कहां है? हमारा उत्तर है कि वहां 'तक्षयुः' और 'चक्रयुः' आदि भूतकाल की क्रियायें हैं। जैसे यहां भूतकाल में 'भवति' लगा

१. पाठकगण इससे पूर्व भी जहां-जहां श्री पं० बुद्धदेव जी का नाम आया है, वहां-वहां सर्वत्र श्री पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी ही समझें।

सकते हैं, इसी तरह 'बभूव' भवति के स्थान में कह सकते हैं। यदि उनको इतिहास अपेक्षित होता, तो '**ऋषिश्च्यवनो भवति**' आदि न कहते। इस प्रकार से भूतकाल की क्रियाओं के स्थान पर '**भवति**' का प्रयोग करते हैं।

"**नदस्य मा रुधतः काम आगन्**" [ऋक् १।१७९।४]। "**ऋषिर्नदो भवति**" [निरु० ५।२] यह 'दम्पती' देवता है। यदि यहां इतिहास होता, तो यास्क यहां वर्तमान का प्रयोग क्यों करते ? '**तत्सख इन्द्रः शुष्णं जघान**' [निरु० ३।११] यहां वर्तमान काल में भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया है। या यह कहो कि ये सारे ऋषि यास्क के सामने उपस्थित थे। यदि थे, तो यास्क ने नद च्यवन आदि की व्युत्पत्ति क्यों की है ? फिर जब सामने हैं, तो इतिहास कैसा ?

आप प्रश्न करते हैं कि आप सारे स्कन्द को मानते हैं या नहीं ? यह वैसा ही प्रश्न है जैसा कि पौराणिक कहा करते है कि सारे पुराणों को मानें। इसी प्रकार से आप सारे निघण्टु और निरुक्त को मानते हैं, तो '**तुर्वश**' का अर्थ वहां मनुष्य किया है, तो फिर आपको आपत्ति क्यों ? आप यौगिक अर्थों के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं—कोई नियन्त्रण होना चाहिये, अनेक अर्थ नहीं होने चाहियें। यह बात वेद में ही नहीं लोक में भी है—'**सर्वे सर्वार्थवाचकाः**'। नियन्त्रण के लिये कहा था, सो नियन्त्रण की ग्यारह-बारह कसौटियां देते हैं।

संयोगो विप्रयोगश्च साहचर्यं विरोधिता।
अर्थ-प्रकरणं लिङ्गं शब्दस्यान्यस्य सन्निधिः॥
सामर्थ्यमौचिति देशः कालो व्यक्तिस्वरादयः।
शब्दार्थस्यानवच्छेदे विशेषस्मृतिहेतवः॥

आप भी एक शब्द के अनेकार्थ मानते हैं, हम भी मानते हैं। हम भी आप से पूछते हैं कि आप बतायें कि आप नियन्त्रण के लिये क्या नियम मानते हैं ? शब्दों की प्रवृत्ति किजन्य है ? घटादि की कम्बुग्रीवादि मान में कैसे प्रवृत्ति हुई ? मेरी ओर से प्रमाण लीजिये—"**देवो देवानां गुह्यानि नामान्याविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे**" ऋ० ६।६५।२। बर्हि शब्द का अर्थ वैदिक कोश में लोक लिखा है—'**बर्हिर्वै लोकः**' [श० १।८।१।११]। भूमि आदि की उत्पत्ति के साथ ही परमात्मा ने नाम भी सारे बताये। आप बतायें कि यह प्रवृत्ति कैसे है ? आप तो कहेंगे कि '**लोक पृच्छ**', किन्तु आपके कथनानुसार लोक का तो कोई ठिकाना ही नहीं। ब्राह्मण और उपनिषदों का भी कोई ठिकाना नहीं। शङ्कर सायण दुर्गादि भी अपनी प्रतिज्ञा को पूरा न कर सके, तो प्रवृति कैसे चली ? इसका आप सप्रमाण उत्तर दें। जैसे आप कह देते हैं कि हमें पता नहीं। कुरुङ्ग का बाप कौन था ? और '**मन्यामहे**' किसने कहा ? आपके अनेकार्थ के नियन्त्रण का कारण क्या है ?

निरुक्तकार ने '**गौः**' शब्द के सात-आठ अर्थ किये हैं, वहां नियन्त्रण क्या है ? औपचारिक अर्थों की कितनी मर्यादा होनी चाहिये ? आपके मत में इन्द्र मित्र वरुण अग्नि आदि का मुख्य अर्थ क्या है ? आपने 'वेदसन्देश' में इन शब्दों का अर्थ परमात्मा किया है। आप बतायें कि सुपर्ण शब्द का मुख्यार्थ क्या है ? आप इसका अर्थ उड़नेवाला जानवर क्यों नहीं करते ? तथा 'वेद-संदेश' में इसका अर्थ आत्मा और परमात्मा क्यों करते हैं ? वृक्ष का मुख्यार्थ क्या है ? इसका अर्थ टहनियों-

वाला क्यों नहीं करते, और प्रकृति क्यों करते हैं? वृक्ष का अर्थ निरुक्त में धनुष किया है—'वक्षे वृक्षे धनुषि धनुषि'। 'अनड्वान्' तथा वृषण' शब्द के मुख्य अर्थ वेद में क्या हैं? अग्नि का मुख्यार्थ महर्षि दयानन्द के अनुसार क्यों नहीं करते? आप इन बातों का सप्रमाण उत्तर दें।

"मा चिदन्यद् विशंसत सखायो मा रिषण्यत।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥" ऋक् ८।१।१ ॥

पं० विश्वबन्धु जी इसका अर्थ करते हैं कि मित्रो! अन्य की भक्ति मत करो, इन्द्र की भक्ति करो। मैं इसका ऐतिहासिक हिरण्यकशिपुपरक अर्थ करता हूं। आपके पक्ष में इसका नियन्त्रण क्या है? हमसे कोई पूछे कि यौगिक शब्दों का नियन्त्रण क्या है? तो हम कहेंगे कि (१)—ईश्वर ने स्वयं बताया—'स भूरिति व्याहरत्, स भूमिमसृजत्।' [तै० २।२।४।२] (२)—मीमांसाकार कहते हैं—'श्रुतिलिङ्गवाक्यप्रकरणस्थानसमाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थ विप्रकर्षात्' ॥ मी० ३।३।१४ ॥ ये छ बातें नियन्त्रण करती हैं। श्रुति नियन्त्रण करेगी। कैसे? 'गो इति पृथिवीनामधेयम्' निघण्टु १।१। 'गो चर्म=श्लेष्मा' इसके लिये प्रमाण यास्क ने वेद का दिया है। इसी प्रकार सारे प्रकरण में 'ज्या' आदि के लिये भी वेद के प्रमाण दिये हैं। इसी तरह लिङ्ग वचनादि के लिये भी समझ लेना।

अब प्रकृत प्रकरण को लीजिये—

'स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥' [ऋ० ८।४।१९]

यहां पर नियन्त्रण ऐसे हैं—मैंने इसका अर्थ राजा और ईश्वरपरक किया था। चोष्कूयमाणः=दान देनेवाला, और चोष्कूयते=काटता है, ऐसा अर्थ यास्क ने किया है। आगे शासन करनेवाला राजा कैसा हो सुमत्=स्वयं जिसको प्रजा अनुमोदन करे, वह राजा होना चाहिये। 'राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः' [ऋक् १।९८।१] श्रुति में राजा शब्द परमात्मा के लिये आया है। इसलिये मैं परमात्मा अर्थ राजा शब्द का करता हूं। राजा का राजा अर्थ तो श्रुतियो में सैकड़ों बार आता। आप कुल्हाड़ा अर्थ के लिये श्रुति बतलायें? श्रुति में कुरुङ्ग के लिये कुल्हाड़ा कहां आता है? आप पर क्या नियन्त्रण है? परमात्मा और राजा के लिये ऋषि शब्द वेद में आता है।

"धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः।" [ऋक् ८।४।२०]

परमात्मा के लिये ऋषि शब्द का प्रयोग—

"अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षिवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृञ्जेऽहं कविरुशना पश्यत मा ॥' [ऋक् ४।२६।१]

यदि आप यह कहें कि यह तो वामदेव ऋषि कह रहा है, तो इसके लिये अगला मन्त्र देखिये—

"अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्।" [ऋक् ४।२६।२]

यह बातें परमात्मा ही कर सकता है । यह सब नाम मुख्य तो परमात्मा के ही हैं, गौणरूप से औरों के भी हैं । आप कुल्हाड़े के लिये ऋषि और राजा शब्द बतलायें । यदि आप दिखादें, तो हम आपका अर्थ मान लेंगे । परन्तु आपका इतिहास तो उड़ ही जायगा । हमने वेदमन्त्र ऋषि शब्द और राजा शब्द के लिये पेश कर दिये । आप किसी को वेदान्तमत और मीमांसामत कह कर टाल नहीं सकते । अच्छा वेद से ही सिद्ध करो ।

ऐतिहासिक पक्ष को मानकर आपको सैकड़ों मन्त्र मन्सूख करने पड़ेंगे । जैसे—

कण्वः कक्षीवान् पुरुमीढो अगस्त्यः श्यावाश्वः सौभर्यर्चनानाः ।
विश्वामित्रोऽयं जमदग्निरत्रिरवन्तु नः कश्यपो वामदेवः ॥
विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव" । अथर्व १८।३।१५-१६॥

हे गौतम वसिष्ठादि ! मेरी रक्षा करो । तो वह ऋषि तो मर गये, वह रक्षा कैसे करेंगे ? कल पंडित जी ने कहा था कि विशेषणवाचक शब्द सब यौगिक हैं, इससे तो सारे शब्द यौगिक हो गये, क्योंकि विशेष्य भी विशेषण बन जाते हैं । यह भी कहा था कि विशेषण विशेष्य भी हो जाते हैं । तब क्या वह यौगिक रहते हैं या नहीं ? तब क्या उनका धात्वादि बदल जाता है ? इस बात का सप्रमाण निरूपण करें ।

श्री प्रधान जी—अब एक पक्ष के दो वक्ता बोल चुके हैं, अब दूसरे पक्षवाले बोल लें । यदि इसी पक्षवाले बोलना चाहें, तो जो कुछ कहा गया, उसे Repeat न करें । यदि आप उत्तर देना चाहें, तो आपको खुला समय दिया जाय । यही अच्छा मालूम होता है कि अब आप उत्तर दे देवें ।

श्री पं० चारुदेव जी—सब बातों का इकट्ठा खण्डन हो, पहिले इन्हें बोल लेने दीजिये ।

महात्मा जी—आपको पूरा वक्त मिल जायगा ।

श्री पं० चारुदेव जी—पं० भगवद्दत्त जी के बोलने के बाद मैं बोलूंगा ।

महात्मा जी—आपका और पं० भगवद्दत्त जी का शास्त्रार्थ हम अलग करा सकते हैं ।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—पं० प्रियरत्न जी को बोलने के लिये समय देना चाहिये ।

श्री पं० चारुदेव जी—यदि कोई एक घण्टा भर अप्रकृत बात करता रहे, तो उससे हमें क्या ? मध्यकालीन प्रयोग अशुद्ध है । हम अशुद्ध प्रयोग [नहीं करेंगे] । मैं प्रकृत का अनुसरण करूंगा । कल बहुत बल दिया गया कि स्कन्द और दुर्ग का यह सिद्धान्त है कि वेद में इतिहास नहीं है । माध्यमिक लोग स्कन्द महेश्वर दुर्गादि अशुद्ध अर्थ करते रहे हैं । हमें मूल का अनुसरण करना चाहिये । मैं इस समय सारी विद्वत्सभा में कहता हूं कि भगवान् यास्क कहां कहता है कि ऐतिहासिक पक्ष असत्य है ? ऐसा वह क्यों नहीं कहता ? वह सब मतों का संग्रह [करता] है । जहां पर वह निरुक्तपक्ष देता है, वह भी समुच्चय है । बार-बार नित्यपक्ष कहा जाता है । भगवान् यास्क कहते हैं कि वर्षा होती हैं । क्या प्रतिक्षण वर्षा होती रहती है ? क्या बिजली सदा होती रहती है ? और क्या विद्युत् नित्य है ? नहीं प्रकृति आत्मा और परमात्मा ही नित्य हैं । यह स्थूल सांसारिक पदार्थ कैसे

नित्य हो सकते हैं ? जिन लोगों ने नित्य माना, उन्होंने वर्षा दिखा दी, तो इस में महिमा क्या नहीं है ?

जो बार-बार कहा जाता है कि टीकाकार यह कहते हैं, और वह कहते हैं, [किन्तु]—
"**यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत् ।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः ॥**" ऋ० २।१२।१॥

इस पर दुर्ग कहता है—"**अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषय इति ।**" नि० १०।१०॥ '**औपचारिकोऽयम्मन्त्रेष्वाख्यानसमयः**' इस प्रतिज्ञा को पूरा कहीं नहीं किया गया । आप इस पंक्ति का अर्थ कर देवें । भगवद्दत्त जी ! आपका वैदुष्य परीक्षित होगा । यास्क क्यों नहीं इतिहास का खण्डन करता ? "**मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः**" [ऋक् १०।५४।२] यहां 'माया' का अर्थ 'बुद्धि' कैसे होगा ? पूर्वापर विचार का अर्थ करना चाहिये ।

कहा गया कि न वेदान्तियों को और न मीमांसकों को मानते हैं । हम क्यों मानें ? हम केवल वेद से ही सिद्ध करेंगे । वेदान्त में इतिहास माना गया है—"**युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः । लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा ॥**" [वेदान्त शाङ्करभाष्य] । हम वेदान्तियों को कैसे मानें ? वह हमारे पक्ष के विरोधी हैं । मीमांसा का पक्ष भी विलक्षण है । मीमांसक अपने प्रकार का नित्यत्व मानते हैं । अपौरुषेय होते हुये वर्ण तथा वर्णानुपूर्वी को भी नित्य मानते हैं । किन्तु महाभाष्यकार लिखते हैं—"**नहि छन्दांसि क्रियन्ते, योऽसावर्थः स नित्यः, या त्वसौ वर्णानुपूर्वी सानित्या, तद्भेदाच्चैतद्भवति काठकं कालापकं मौदकं पैप्पलादकमिति ।**" [महा० ४।३।१०१] । अब बताइये, कहां गया मीमांसकों का वर्णानुपूर्वी नित्यत्व पक्ष ? यह सिद्धान्त ठहर नहीं सकता ।

बार-बार कहा जाता है, और मैं भी समझता रहा कि यास्क हमारे मन्तव्यों का पोषक है । मुझे तो यास्क सनातनधर्मी प्रतीत होता है, वह अधिष्ठातृदेवतावाद को मानता है । उसने कहां माना है कि अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं ? सारी द्वादशाध्यायी में कहीं दिखाओ कि अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं । हां Science of Language में परम प्रमाण है, परन्तु सिद्धान्तों में वह मान्य नहीं है ।

आप कहते हैं कि पं० विश्वबन्धु जी ने यह अर्थ किया है, किया होगा, मैं नहीं मानता । "**सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च**" [ऋ० १।११५।१] । यास्क तीन देवता मानता है, फिर उनमें से एक सूर्य को ही प्रधान मानता है । इस पर अनुक्रमणी देखिये, वहां भी यही लिखा है कि यह सब सूर्य की ही महिमा है । निरुक्त केवल तीन ही प्रकार का अर्थ मानता है, वह हमारे पक्ष का पोषक नहीं ।

पं० बुद्धदेव जी कहते हैं कि श्रुति से सिद्ध करो । आप राजा के सम्बन्ध में बताते हैं । 'न वयं राजानं पृच्छामः, कुरुङ्गं पृच्छामः' हम राजा के सम्बन्ध में नहीं पूछते, कुरुङ्ग की बात पूछते हैं । आप कहते हैं कि यास्क ने गौ के अनेक अर्थ किये हैं । वहां व्युत्पति के आश्रय से किये हैं, परन्तु वहां सब की यास्क ने व्युत्पत्ति नहीं की । '**अथापि स्नाव च श्लेष्मा च**' [निरुक्त २।५] यहां पर व्युत्पत्ति नहीं की । इससे सिद्ध है कि व्युत्पत्ति पीछे और अर्थ पहिले—'**अर्थभेदे व्युत्पत्तिभेदः**' ।

यास्क मानता है कि वेद के शब्द बोले जाते हैं। कौत्स को उत्तर देता हुआ कहता है—'**अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्**' [निरुक्त १।१६]। उस समय आचार्य जिस अर्थ में समझते थे, वही अर्थ यास्क ने कर दिया, यही प्रवृत्ति का निमित्त है।

आप '**भूरिति व्याहरन्**' पढ़ कर कह देते हैं कि परमात्मा ने शब्दों के अर्थ बताये। परन्तु यह भी तो बताइये कि कैसे बताये? केवल आप यह मन्त्र '**देवो देवानां गुह्यानि नाम आविष्कृणोति बर्हिषि प्रवाचे**' [ऋक् ६।६५।२] पढ़ देते हैं, और कह देते हैं कि परमात्मा ने देवताओं के गुह्य नाम प्रकट किये। किन्तु कैसे किये, यह आप नहीं बताते? यह बार-बार कहा जाता है—'**छन्दसि लुङ्लङ्लिटः**' [अ० ३।४।६] यह पाणिनि ने कहा है कि वेद में ऐसा है। आपको किसने अधिकार दिया कि आप इस सूत्र को यास्क पर भी लगायें, और 'बभूव' का अर्थ 'भवति' कर देवें? आप कहते हैं कि ऋषि लोग छान्दस प्रयोग करते हैं। परन्तु 'बभूव' तो छान्दस प्रयोग नहीं है। यह तो दोनों में समान प्रयोग है, यह लौकिक प्रयोग भी है। इन सब बातों का सम्यक् विचार करिये।

मैं वैदिक लोगों को चैलेंज करता हूं—

'य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमा विवेश' ॥ [ऋक् १।१६४।३२]

इस मन्त्र में देवता कौन है, इसे आज बताके जायें।

श्री प्रधान जी—देवतावाची जो निरुक्त में आये हैं, क्या वह देवताविशेष के नाम हैं?

श्री पं० चारुदेव जी—हां।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—पं० चारुदेव जी बोले, आपने उठते ही बोला कि यदि कोई आदमी एक घण्टा अप्रकृत बात करता रहे, तो उससे हमें क्या? आपने कोई दलील नहीं दी, आपका दावा बेदलील खारिज। पं० गुरुदत्त जी ने बतलाया कि शिवसंकल्प आदि पदवियां हैं, इस तरह से बड़ी अद्भुत बातें कहीं। आप कहते हैं कि सारी द्वादशाध्यायी निरुक्त में अग्न्यादि परमात्मा के कहीं नाम नहीं। निरुक्त के विषय में द्वादशाध्यायी नाम कैसे चला? यह पहली बार दुर्ग ने चलाया है। मैं चैलेंज करता हूं कि दुर्ग चौदह अध्यायों को ही बारह अध्याय में मानता है। क्योंकि दुर्ग ने अगले अध्यायों के प्रमाण दिये हैं।

निरुक्त ने अपना मौलिक विषय तीन प्रकार के देवताओं से समाप्त किया है। यास्क ने अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं, इसका खण्डन नहीं किया। यास्क को जहां पर अग्न्यादि परमात्मा के नाम हैं, ऐसे निरूपण की आवश्यकता नहीं पड़ी, वहां नहीं किया। अन्त में वह यास्क परमात्मा अर्थ करता है—'**अथेमा अति स्तुतयः**' नि० अ० १३।१। वहां मन्त्रों के मन्त्रों में ईश्वर का वर्णन है। ठीक इसी प्रकार यास्क की प्रक्रिया का सहारा लेकर स्वामी जी ने अर्थ किया है।

सांख्य के अनुसार पुरुष कूटस्थ नित्य है, और प्रकृति परिणामिनी नित्य है। हमने जो कहा कि वर्षादि नित्य हैं, हमारा मतलब है कि प्रवाहरूप से नित्य हैं। आप कहते हैं कि वर्षा का

वर्णन आने से महत्व क्या हुआ ? यह प्रश्न वेद पर है, मुझ पर नहीं। इतना बताये देता हूं कि वहां पर वर्षा के अनेक प्रकार के सिद्धान्तों का वर्णन है।

पं० बुद्धदेव जी ने वेदमन्त्र से कहा था कि परमात्मा ने गुह्य नामों को प्रकट किया, यह भी आपका एतराज वेद पर है। कठ संहिता में आया है—'**तस्माद् ब्राह्मणा उभयीं वाचं वदन्ति या च देवानां या च मनुष्याणाम्**' [तथा मै० १।११।५]। आरम्भ से दोनों भाषायें मौजूद थीं। पण्डित जी आगे यह कहते हैं कि यह महाभाष्य में लिखा है। वहां '**तेन प्रोक्तम्**' [अ० ४।३।१०१] सूत्र पर '**ग्रामे ग्रामे काठकं कालापकं च प्रोच्यते, नित्यानि छन्दांसि, नहि छन्दांसि क्रियन्ते**' [पाठ है]। सूत्र है—**दृष्टं साम** [अ० ४।२।७] मन्त्र दृष्ट हैं प्रोक्त नहीं, शाखायें प्रोक्त हैं। मन्त्र है—'**यस्तित्याज सचिविदं सखायं०**' [ऋक् १०।७१।६], शाखा में इसी जगह 'सखिविदं' पाठ है। इसी प्रकार भाष्यकार '**मतो छः सूक्तसाम्नो**' [अ० ५।२।५९] सूत्र पर लिखते हैं कि वर्णानुपूर्वी नित्य है, मन्त्र दृष्ट हैं। शाखायें ब्राह्मण और कल्पसूत्र सब प्रोक्त हैं।

आगे पण्डित जी ने बड़े दावे से कहा कि 'बभूव' का अर्थ 'भवति' नहीं हो सकता। फिर कहते हैं कि 'भवति' का अर्थ 'अस्ति' है। कुत्स ऋषि होता है, उस मन्त्र का अर्थ उसने देखा और प्रचार किया, उसने अपना नाम कुत्स रख दिया। आप कहते हैं कि यास्क सनातनधर्मी है। परन्तु मैं पूछता हूं कि क्या रथ उलूखल मुसलादि चेतन हैं ? यास्क कहता है—'**माहाभाग्याद्देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते, एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति**' [नि० ७।४]। सारे ऋषि-मुनि ब्रह्म को मुख्य देवता मानते हैं। यास्क के मत में और देवताओं का वर्णन करते हुये ब्रह्म अभिप्रेत है।

आप कहते हैं कि 'कुरुङ्ग' को पूछते हैं राजा को नहीं। इसका उत्तर दे दिया गया। जो रही सही है, वह अब लीजिये। इस समय जितने निरुक्त हस्तलिखित ग्रन्थ मिलते हैं, वह पांच सौ वर्ष तक पुराने हैं। स्कन्द ६३० सन् में हुआ, दुर्ग हम से तेरह चौदह सौ वर्ष पुराना है। उसके पास भी पुराने कई Mss थे। '**चत्वारो वर्णाः निषादः पञ्चम इत्यौपमन्यवः। निषादः कस्मात् निषदनो भवति, निषण्णमस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः।**' [नि० ३।८]। दुर्ग ने जो अर्थ किया वह इस वाक्य का अर्थ नहीं है। दुर्ग का वाक्य है—'**निषद्य निषद्य हन्तीति**' [नि० दुर्ग टीका पृष्ठ २२३]। यह मेरा सिद्धान्त है कि दुर्ग Text सब से अच्छी है। उसने '**कुरुङ्गो राजा बभूव**' [नि० ६।२२] में 'बभूव' पाठ नहीं रखा। आगे "**ऋषिर्नाभाको बभूव**" [नि० १०।५] पाठ भी दुर्ग की टीका में नहीं मिलता। "**कुशिको राजा बभूव**" [नि० २।२५] में भी 'बभूव' पाठ नहीं है।

ऋग्वेद के अन्दर बहुत सी दान-स्तुतियां हैं, उनमें एक यह है। उनमें सर्वानुक्रमणी की परिभाषा के अनुसार '**प्रायेणैन्द्रे मरुतः राज्ञां च दान-स्तुतयः**' [सर्वा० उपो० २२-२३] इन्द्र के सूक्तों में ही प्रायःराजा के दान की स्तुति आती है। ऋ० ८।२४। मं० २८-३० इन्द्र देवता, एक ऋषि या राजा की स्तुति लिखा है। आखिर कात्यायन ने अर्थ तो नहीं किया, यही तो लिखा है—'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः' देवता है। एक और मन्त्र का [ऋ० ८।२४।२८-३०] देवता सर्वानुक्रमणीकार दानस्तुति लिखता है। बृहद्देवता में उसी मन्त्र का 'उषा' देवता लिखा है। इसका मतलब यह है कि इन्द्र राजा को कहा जाता था। वेद जो अनादि ग्रन्थ हैं, उनमें पहिले इन सूक्तों का देवता इन्द्र था। पीछे से किसी राजा

ने मन्त्र से देखकर अपना नाम कुरुङ्ग रख लिया। पीछे अनुक्रमणी ने **'कुरुङ्गस्य दानस्तुतिः'** ? लिख दिया। मैंने मन्त्र से देखकर अपने पुत्र व पुत्री का नाम क्रमशः सत्यश्रवाः और सुनृता रखा। मन्त्र पहले से मौजूद थे, पीछे से अनुक्रमणी बनी। किन्तु आपका सिद्धान्त यह मालूम होता है कि वेद पीछे से हुआ। मीमांसाकार मानता है कि कोई न कोई कर्ता अवश्य होना चाहिये। इसको (=वेद को) ऐन्द्रिय नहीं बना सकता। इसका बनानेवाला कोई अतीन्द्रिय होना चाहिये। इसीलिये यास्क ने कहा है—**"पुरुषविद्यानित्यत्वात् कर्मसम्पत्तिर्मन्त्रो वेदे"** [नि० १।२]। इससे प्रतीत होता है कि वह भी वेद को नित्य मानता है।

पं० वासुदेव जी ने मुझ पर प्रश्न किया था, उसका उत्तर अब वह ले लेवें। यास्क १०।१० में लिखता है—**'ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवति आख्यान-संयुक्ता'**। इसका सरल अर्थ यह है कि—"ऋषि की, देखा है अर्थ जिसने, प्रसन्नता होती है, जब उसके साथ कथा संयुक्त होती है।" इससे प्रतीत होता है कि मन्त्रों में आख्यान संयुक्त नहीं होता, किन्तु अर्थ में होता है। इस पर दुर्ग कहता है—

"ऋषेर्दृष्टार्थस्य' अनुभूतेन्द्रमैत्रस्येन्द्रवयस्यस्य गृत्समदस्य इन्द्रं प्रति 'प्रीतिः' तुष्टिः 'भवति आख्यान-संयुक्ताः' आख्यान-सम्बन्धात्। अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थः उपेक्षितव्यो-ऽसावपि तेषां विषयः"। [दुर्ग टीका पृष्ठ ८३४]

सिद्धान्त की बात यूं ही नहीं उठानी चाहिये। अगर सिद्धान्त ठीक है, तो हमको लगाना चाहिये। आपकी समझ में स्वामी जी ने इनका अर्थ लगाया है या नहीं ? दुर्ग की टीका में 'ऋषि' शब्द लिखा है॥

पण्डित-सभा की छठी बैठक, २०-५-३१ सायंकाल

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी—यह जो विचार हो रहा है, यह वैसे नहीं होना चाहिये, जैसे आर्य-समाज और सनातन धर्म का होता है। एक ही विषय पर तीन दिन गुजर गये हैं। परन्तु अभी तक निर्णय नहीं हो पाया। संभव है कि अगला विषय शुरू कर दिया जाय, तो यह भी स्पष्ट हो जाय। आर्यसमाज का सिद्धान्त है कि 'वेद में इतिहास नहीं'। यदि इतिहास माना जाय, तो वेदों का नित्यत्व नहीं रहता। स्वामी जी ने ऐसे अर्थ अनेक स्थलों पर किये हैं कि जहां संज्ञावाचक शब्द प्रतीत होते हैं, परन्तु वहां अर्थ नित्यत्व विषय के किये हैं। इसी प्रकार से पं० बुद्धदेव जी आदि ने भी अर्थ किये हैं। यदि व्यक्तिविशेषों का इतिहास माना जाय, तो इतिहास अवश्य ही उस पुरुष की मृत्यु के पीछे निर्माण हुआ मानना पड़ेगा।

कई जगहों पर लक्षणा से अर्थ किये जाते हैं। स्वामी जी ने—**'यो जागार तमृचः कामयन्ते'** [ऋक् ५।४४।१४], इसके आगे **'अग्निर्जागार०'** [ऋक् ५।४४।१५] इत्यादि मन्त्रों का अर्थ करते हुये अग्नि किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं बताया। यदि इतिहासपरक अर्थ हो, तो वेदों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। आप इनका सौन्दर्य स्थापित करें। ऐसे इतिहास मानने से सौन्दर्य में गड़बड़ हो जाती है। आपको प्राचीन ऋषियों के मत का पोषण करना चाहिये। यदि इतिहास के रहते हुये नित्यत्व में कोई बाधा न हो, तो कोई हर्ज नहीं। अतः जहां मर्यादा बन सकती हो, वहां अव्य-

वस्था में जाना अच्छा नहीं। तीन दिन गुजर गये, इसलिये इसको कर लो। अधिक बात न कह कर जितनी बात सिद्धान्त से सम्बन्ध रखती है, उतनी ही बात कह कर निर्णय कर लो, और अगले विषय पर चलो।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—अगर स्वामी जी कोई व्यवस्था बता दें, तो हम वह करलें। हम तो समाज के भले के लिये ही खड़े हुये हैं।

श्री स्वामी नित्यानन्द जी—जो बात स्वामी जी ने कही है, वह मैं भी मानता हूं। अगर इतिहास है भी, तो उससे निपटने का क्या मार्ग है ? सभी आर्य हैं, धर्म की इच्छा से आये हैं। जो गृहस्थ हैं वह बंध जाते हैं। परन्तु जो ब्रह्मचारी हैं, वह ज्यादा काम कर सकते हैं। ब्रह्मदत्त जी छोटी अवस्था से इसी प्रकार लगे हुये हैं। इसी प्रकार विश्वबन्धु जी और भगवद्दत्त जी लगे हुये हैं। इनको मिल कर ऐसा मार्ग निकालना चाहिये कि जिससे आर्यसमाज का कल्याण हो। वाद-विवाद हो, पर उसमें किसी पर जबरदस्ती न हो। दोनों में से किसी के मन पर आघात न हो। मैं प्रेम से यही कहूंगा कि ऐसा मार्ग ढूंढ़ें, जिससे आर्यसमाज का उद्धार हो। विशेषकर विश्वबन्धु जी तथा ब्रह्मदत्त जी, जो कि गृहस्थ नहीं हैं, वह अधिक [कार्य] कर सकते हैं।

श्री प्रधान जी—दो तीन पण्डित इधर के और दो तीन पण्डित उधर के हों, और उनकी एक सब-कमेटी बन जाये, और वह विचार ले। आप मिल कर किसी न किसी नतीजे पर बात को पहुंचा देवें, तो बड़ी अच्छी बात है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—परन्तु यह होना चाहिये कि जैसे पहिले स्वामी जी में श्रद्धा थी, उन पर मखौल न किया जाय। जो बात समझ में न आवे, उस पर सोच लेवें।

श्री प्रधान जी—यह हमारी बदकिस्मती होगी, अगर आप जैसे पण्डित बैठ कर मखौल करें।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैंने कहा था कि जब समाज बना, तब स्वामी जी पर बड़ी श्रद्धा थी।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं डिक्शनरी का काम छः सात वर्षों से कर रहा हूं। उसकी भूमिका में मैंने स्वामी जी के सम्बन्ध में जो भाव प्रकट किये हैं, वह मैं यहां सुनाना नहीं चाहता। मैंने जो लिखा है, अगर मैं उसे सुनाऊं तो पता लगेगा कि किस तरह नास्तिकता के आरोप लगाये जाते हैं। मैंने वहां क्या लिखा है ? यहां पर यास्क पर शास्त्रार्थ है कि यास्क क्या मानता है ? वह वेद में इतिहास मानता है या नहीं ? मेरे 'वेद-सन्देश' में मेरा सिद्धान्त है, परन्तु सदा बड़े-बड़े आदमी कहते हैं कि ब्राह्म महाविद्यालय नास्तिकों से भरा हुआ है। कोई नारायण स्वामी जी को कहता है, कोई किसी को कहता है। सो यह प्रवाद खामख्वांह फैलाया जा रहा है। इससे प्रेम का मार्ग नहीं निकलता। मैंने 'वेद-सन्देश' के चतुर्थ भाग में एकेश्वरवाद को स्थापन करने की चेष्टा की है, चाहे सफल हुआ या नहीं। परन्तु जो उसे पढ़ेगा, उसकी दाद देगा।

मैंने आरम्भ में यह श्लोक दिये हैं—

वृत्तं यत्त्रिषु वर्णनं सुकुतुकं कायात्मचेतोनुगं,
प्राप्तस्तत्कृपया तवैव भगवन् भागश्चतुर्थोऽप्ययम् ।
एतत्पाठविधूतसंशयमला सर्वे सुगुप्ता किल,
पूज्येशे त्वयि बद्धपेशलधियस्तत्त्वे रताः स्युः सदा ॥१॥
अस्तीति प्रवदन्ति केवलगिरा लोके मनुष्याः प्रभुम्,
यत् सत्यं न विदुः प्रतीतिविषयं याथार्थ्यं सन्मानतः ।
तस्माद्वादविवादकौशलततिः संहारवृक्षाः किल,
ज्ञाज्ञानां सममेव दुःखकरणे कोलाहले कारणम् ॥२॥
वेदे केचिदाहुरर्थविलयं मायाविनि ब्रह्मणि,
नानादेवविधानवादविधुरा अन्ये भ्रमेयुर्भृशम् ।
सत्यासत्यविनिर्णयस्तु कठिनो वादाश्च वादाः किल,
वेदाभ्यासततौ रतैव धिषणा वेदान्तसिद्धान्तगाः ॥३॥
विश्वेशो वितनोतु निर्मलधियां मूनायकानां रुचिः ।
सद्धर्मे विनये स्वकीर्त्तिविततौ विद्याप्रचारे शुभे ।
न्याय्याचारविचारसाररुचिरा नीतिः सदा वर्धताम् ।
त्यक्त्वान्यव्यसनं श्रुतिव्यसनिनो विज्ञाः भवेयुर्जनाः ॥"

दस-बारह वर्ष में भी दो मिनट के लिये भी मिल कर विचार क्यों न किया जा सका ? आर्यसमाज के इतिहास में यह कान्फ्रेंस पहली है । जब शास्त्र का पता लग जावे, तब कमेटी द्वारा निर्णय करावें । यहां पण्डितों को स्वतन्त्रता होनी चाहिये कि वह शास्त्र को बतला सकें । Executive और gudiciary जुदी-जुदी होनी चाहिये । मैंने भी श्री नारायण स्वामी जी से यही कहा था कि प्रबन्ध अलग चीज है । आज विश्वबन्धु को दबा दोगे । ब्राह्म महाविद्यालय से निकलवा दोगे । मुझे ब्राह्ममहाविद्यालय की चारदिवारी से मोह नहीं है । विश्वबन्धु राजाराम क्या चीज हैं ? सत्य नित्य चीज है । स्वामी दयानन्द होता और उसके सामने सत्य और वेद को रखा जाता, तो वह सत्य पर उंगली रखता । वह सत्य और वेद को पर्याप्य मानता था, इसीलिये वह वेद को मानता है । यदि भेद होता तो ऋषि दयानन्द सत्य को मानता, हमें भी ऐसे ही करना चाहिये । पूर्ण सत्य तो परमात्मा है, पूर्ण सत्य न किसी को मिला और न किसी को मिलेगा । हम तो उन ६ अन्धों की तरह हैं । ऋषियों को एक-एक बात का साक्षात्कार हुआ । यदि आर्यों में भेद होता है, तो आँखों में फर्क पड़ जाना है । शास्त्र के सिर पर पालिसी को मत रखो ।

श्री प्रधान जी—आपका मतलब है कि आप का विचार हो जावे, फिर (एक्जीक्यूटिव) Executive बैठे ?

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—मैं एक विचार रखता हूं कि यदि हम सब का आत्मा से यह अभिप्राय हो कि स्वामी दयानन्द की प्रक्रिया का ढंग ठीक है, और उसमें हमारा विश्वास है, तब उस अवस्था में हमारे मन वचन कर्म से कोई बात हमारे द्वारा ऐसी नहीं होनी चाहिये जिससे आर्यसमाज को

हानि पहुंचे। परन्तु जैसे मैं यहां प्रायः देखता रहता हूं कि सब छोटे-बड़े के सामने यह बातें घृणित रूप से रखी जाती हैं, जिसका परिणाम बहुत बुरा होता है। यह ठीक है कि मनुष्य सर्वज्ञ नहीं, किन्तु यह बातें अधिकारी को ही कहनी चाहियें, जिससे आर्यसमाज पर लांछन न लगे।

हमने जो दो चार अक्षर पढ़े हैं, उनके अनुसार हम आत्मा से ठीक समझ कर मानते हैं कि जो कुछ स्वामी दयानन्द ने लिखा है, वह ठीक लिखा है। वह बात तो समाज के विरुद्ध कहीं न कही जावे, तब तो ठीक है। यदि पढ़ाने में विद्यार्थियों में बातचीत में अथवा लेक्चर देने में समाज पर कटाक्ष किये जायें, तो महर्षि दयानन्द में व समाज में अश्रद्धा फैलेगी, और हानि पहुंचेगी। जब ऐसा हो कि स्वामी जी के बखिलाफ अखबारों में लिखा जाये, स्वामी दयानन्द और आर्यसमाज के विषय में खिल्ली उड़ाई जाये, विद्यार्थियों में ये बातें कही जायें, तो यह बात सहन नहीं की जा सकती। ईमानदारी हमारी इस बात में है कि विरुद्ध बात मानने पर हम साफ कह दें, और आर्यसमाज से फिर भी प्रेम करते रहा करें।

कोश के सम्बन्ध में लाहौर समाज के उत्सव पर मैंने स्वयं इनके स्थान पर जाकर बड़े प्रेमपूर्वक इनसे निवेदन किया कि आप जरा अपने ढंग को बदल लें। आपने सोलह पृष्ठ में स्वामी दयानन्द के अर्थ पर सत्रह चिह्न लगाये, और महीधर को उतने ही स्थल में केवल एक दो स्थानों पर भूलें सूझी हैं। यह बातें यदि मुसलमानों आदि के हाथों पड़ जायें, तो वह आर्यसमाज के विरुद्ध शोर मचायेंगे। मैंने यह भी कहा कि उचित यह बात है कि दस पांच विद्वानों के सम्मुख, जिनको आर्यसमाज उचित समझे, यह बातें रख दिया करें। यदि आप को कोई बात नहीं सूझती, तो सम्भव है कि उनको सूझ जायें। यदि उनको भी न सूझे, तो औरों को भी भेजा जा सकता है।

ऋषि दयानन्द हम लोगों की अपेक्षा अधिक विद्वान् थे, उनके मार्ग को दूषित न करें। मैंने यह बात उनसे कही। श्री स्वामी सर्वदानन्द जी मुझे साथ लेकर उनके पास गये। उस समय पं० विश्वबन्धु जी ने कहा कि यदि 'पचास' में उन्चास पण्डित कुछ कह दें, यदि विश्वबन्धु की समझ में नहीं आयेगा तो, वह नहीं मानेगा। मैं यह चाहता हूं अगर कोई ऐसा मार्ग निकल आवे, तो बड़ा अच्छा होवे। यह विचार मिलकर हो, मगर आचार्य दयानन्द को साथ लेकर चलना होगा, यह पहली बात है। विचार चाहे जैसे भी हो। अन्यथा दयानन्द की स्थिति ठीक नहीं रह सकती। किसी बात में समाज पर हर्फ नहीं आना चाहिये। अगर नया मार्ग चलाना चाहें, तो समाज में ऐसे भी व्यक्ति हैं, जो इसको रोकने का प्रयत्न करेंगे।

श्री प्रधान जी—जिस भाव से यह सम्मेलन हुआ, मैं अन्त में उन बातों का विस्तार से जिकर करूंगा। इस समय जो स्वामी सर्वदानन्द जी ने कहा, और स्वामी नित्यानन्द जी ने अनुमोदन किया, उस विषय में कुछ कहना चाहता हूं। दो पक्ष हैं—एक यह कि बहुत से पण्डित कहते हैं कि वेद में इतिहास नहीं, किन्तु दूसरे कहते हैं कि हमारी Study स्टडी से हमें इतिहास मालूम होता है। एक यह पोजीशन है कि निरुक्त इतिहास मानता है। दूसरा पक्ष यह भी है कि वह भी नहीं मानता। परन्तु स्वामी जी निरुक्त को मुख्य नहीं मानते, चाहे वह उसका आदर करते हैं। वेद को मुख्य

मानते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों की भी कई बातें स्वामी जी ने नहीं मानी। इसीलिये यह जरूरी नहीं कि वह भी बातें मानी जायें, जो कि समाज के सिद्धान्त के विरुद्ध आती हों।

प्रश्न यह है कि वेद मन्त्रों में इतिहास है कि नहीं? इतिहास मानने पर वेद को नित्य नहीं मान सकते। जिनके नाम हैं, वेद उनके पीछे के मानने पड़ेंगे। या हमें इन्जील कुरान और भविष्य पुराण की तरह की पोजीशन लेनी पड़ेगी। इस पहलू में समाज को प्रचार बन्द कर देना पड़ेगा। ऐतराज हर एक के दिल में आते हैं, परन्तु यत्न करने पर उनका समाधान हो जाता है। मैं स्वामी जी का तात्पर्य यह समझा हूं कि दो-दो पण्डित दोनों पक्षा के विचारकों के हों, वह मिलकर विचार करें। बीच में श्री नारायण स्वामी जी या श्री स्वामी सर्वदानन्द जी हों। यदि वह किसी नतीजे पर पहुंच जावें, तो इससे अधिक खुशकिस्मती नहीं। नहीं तो वह सभा में आकर कह देवें कि हम नतीजे पर नहीं पहुंचे। यदि इस तरह तीन स्थल भी हल हो जावें, तब भी ठीक है। नहीं तो समाज भी चलता रहेगा और Individuals भी चलते रहेंगे। आप इसी Proposal पर agree करते हैं, या नहीं ? यदि आप agree करते हैं, तो ऐसा कर लिया जावे।

श्री लाला देवीचन्द जी –क्या आपका विचार है कि इस विचार को अब समाप्त कर दिया जावे ?

श्री प्रधान जी—मेरा मतलब इन मन्त्रों के सम्बन्ध में है। वह विचार कर लें, और फिर यदि मन्त्र का अर्थ स्पष्ट कर देवें, तो अच्छा है। और बाकी पण्डित निरुक्त पर विचार करते रहें।

श्री लाला देवीचन्द जी—निर्णय जल्दी नहीं हो सकता। इसके लिये दिन चाहियें।

श्री प्रधान जी—मन्त्रों का अर्थ निश्चय किया जाय। मैं तो कहता हूं कि सारे पण्डित मिल कर विचार करें, तो अच्छा है।

श्री लाला देवीचन्द जी—इसके लिये टाइम चाहिये।

श्री महात्मा जी—आज का नतीजा अच्छा निकले, तो कल के विचार के लिये बहुत समय दिया जायेगा।

श्री लाला देवीचन्द जी—चन्द पण्डितों के बाहर चले जाने पर बाकी के पण्डित क्या करेंगे ?

श्री प्रधान जी—चारुदेव जी को सत्र का प्रतिनिधित्व मिल जायेगा। किन्तु यह बतावें कि वेद में इतिहास है या नहीं ?

श्री पं० चारुदेव जी—मेरा यह पक्ष नहीं। मैं वेद में इतिहास नहीं मानता।

श्री प्रधान जी—मेरा हृदय गद्‌गद हो गया।

श्री लाला देवीचन्द जी—पं० विश्वबन्धु जी को सन्देह है। पं० राजाराम जी ने कह दिया है कि वेद में इतिहास नहीं है।

श्री प्रधान जी—मुझे यह जानकर प्रसन्नता है कि ने वेद में इतिहास नहीं मानते।

श्री लाला देवीचन्द जी—जबतक सन्देह है, प्रचार नहीं करना चाहिये। हां यदि यह निश्चय हो गया तो फिर प्रचार करें।

श्री प्रधान जी—पांच या छः मन्त्रों में इतिहास की झलक आती है। आप दोनों पक्ष के पण्डित लोग मिलकर निरुक्त के सहारे वा बिना भी, मन्त्रार्थ निर्णय करके बता दें। निरुक्त के मुताबिक भी विचार हो, और वेद के लिये अलग विचार हो जाये। मेरा विचार है कि अब विचार प्रारम्भ किया जाये, तो अच्छा है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मेरा विचार है कि कल तक तो ऐसे ही विचार चलें। कुरुक्षु का पता चल जाये, तो अच्छा है।

श्री प्रधान जी—उस तरह कमेटी करने से लाभ होगा या नहीं ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं बड़ा फायदा समझता हूं, किन्तु पहले कसौटी तय कर लें।

श्री प्रधान जी—दोनों पक्षवाले समझते हैं कि कि यदि किसी भी स्थल में दोनों का इत्तिफाक हो तो अच्छा है।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—इसके लिये दो महीने के लिये पांच छः पण्डित लोग विचार करें, और रोज चार पांच घण्टे विचार होना चाहिये, और अपने पास लिखें, फिर रिजल्ट देवें।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—पहले कसौटी का निर्णय होना चाहिये।

श्री प्रधान जी—हां कसौटी का निर्णय और कर लिया जाये।

श्री लाला देवीचन्द जी—मैं पण्डित भगवद्दत्त जी की ताईद करता हूं। यह सवाल बड़ा मुश्किल है, इस पर विचार अवश्य होना चाहिये।

श्री पं० आर्यमुनि जी—मेरे विचार में जो बात विशद रूप से निश्चित न हो, जब तक सिद्धान्त का निश्चय न हो, तब तक उस प्रकार के विचार का लाभ कुछ नहीं होगा। ऋग्वेद में ब्रह्म शब्द ईश्वर के मायने (=अर्थ) में स्वामी जी के भाष्य में मिलेगा। दयानन्द के तटस्थ होने पर भी मैं इसलिये मानता हूं कि वेद के लिये शास्त्र शब्द आया है। और शंकर ने ब्रह्म के विषय में **'शास्त्रयोनित्वात्'** [वेदा० १।१।३] सूत्र पेश किया है। फिर इसके लिये Reason दिया है। **'जन्माद्यस्य यतः'** [वेदा० १।१।२] यह खूबी है। इसी प्रकार की खूबियां महर्षि दयानन्द में हैं। उन्होंने निरुक्त के आधार पर ही 'ब्रह्म' का अर्थ ईश्वर किया है।

एक महाशय ने कहा था कि यास्क सनातनी है, और साथ ही इतना महत्त्व देते हैं कि उसके आश्रय से इतिहास सिद्ध करते हैं। इस सिद्धान्त का निश्चय विशद रूप से हो जाना चाहिये। यदि इतिहास ही मानना है, तो वेद में राम कण्वादि शब्द मौजूद हैं। मैं आपसे पूछूंगा कि ये रामादि कौन से हैं ? कमेटी में यह बातें नहीं हो सकती। इसलिये सिद्धान्तों का निश्चय हो जाये, तब कोई कमेटी होनी चाहियें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—जो पं० ब्रह्मदत्त ने डिक्शनरी (कोश) के सम्बन्ध में कहा, उसमें

जो पचास पण्डितवाली बात कही, उसके आधार पर चाणक्य की तरह व्रत धारण किया है। यह गलतफहमी पर Based है। मैंने कहा था कि इन चिह्नों का तात्पर्य सब जगह गलती नहीं है। बल्कि कहीं न समझ में आना, कहीं सन्देह, कहीं गलती भी है। मैंने उनसे कहा था कि आपकी बात में Practicability नहीं दीखती, क्योंकि आर्यसमाज के विद्वान् समय नहीं देते, पत्र लिखने पर उत्तर नहीं देते। और साथ ही मेरा भी अधिकार है। यह सार है उस बातचीत का।

फिर सर्वदानन्द जी आये, तब भी पण्डितों की लिस्ट के सम्बन्ध में बातचीत हुई। मैंने कहा—जब मैं डिक्शनरी एडिट करता हूं, तब मेरी जिम्मेवारी है। इसलिये प्रधानता मैं अपनी राय को ही दूंगा। मैंने यत्न किया कि और भी मेरे साथ सहयोग करें। पहला एडिशन समालोचना के लिये छपा था। उसको समाजों के पण्डितों के पास भेजा। दूसरे लोगों ने समालोचना भेजी, वह हमारे पास रखी हुई हैं, परन्तु समाज में ऐसा ख्याल नहीं है। मैंने और कई स्कालर्स के साथ पत्रव्यवहार किया, उनके उत्तर आये। उन्होंने कार्य पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की, और सहायता का वचन दिया। एक आल इण्डिया आनरेरी कमेटी बन चुकी है। डा० विन्टर्निट्स आर्टियल आदि उसके मेम्बर हैं।

श्री प्रधान जी—यह कोश का मामला है, उसे न छेड़ें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं शीघ्र ही समाप्त करूंगा। मैंने पिछले दस वर्ष कोई प्रोपगण्डा नहीं किया। पिछले ६ मास में मेरे विरुद्ध प्रोपगण्डा किया गया कि विश्वबन्धु घोर नास्तिक है। अखबारों में मेरे विरुद्ध लिखा गया। 'आर्यवीर' अखबार को इस काम के लिये वर्ता गया। उपदेशकों ने मेरे विरुद्ध प्लेटफार्म पर लेक्चर दिये। लाला देवीचन्द जी भी जिम्मेवार हैं, उन्होंने मेरे विरुद्ध लायलपुर शिमला लाहौर आदि स्थानों पर व्याख्यानों में कहा। मेरा भाव यह नहीं कि स्वामी दयानन्द विद्वान् नहीं, और यह भी भाव नहीं कि उन्होंने कोई गलती नहीं की।

श्री पं० बुद्धदेव जी (मीरपुरी)—आपने कहा है कि मैंने सिद्धान्त-विरुद्ध कहीं नहीं कहा। आपने क्रान्ति-सभा में कहा कि केवल दो वर्ण हैं—आर्य और दस्यु। आपने राम नाम के विषय में कहा। आपने एमनाबाद आदि स्थानों पर सिद्धान्त के विरुद्ध प्रचार किया, यह मैं सप्रमाण कह सकता हूं।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—यह सब ६ मास के अन्दर-अन्दर की बातें हैं। मेरे विरुद्ध प्रचार का ही यह परिणाम है।

श्री पं० राजाराम जी—मुझे आर्यसमाज में सच्चाई खेंचकर लाई है। बिरासत में मुझे कट्टर ब्राह्मणपन मिला है। मेरे विरुद्ध कई पत्र लिखे गये, परन्तु मैंने सच्चाई को नहीं छोड़ा। जहां तक मुझ से हो सका, समाज के सिद्धान्त को पुष्ट करने का यत्न किया। जहां कठिनता प्रतीत हुई, वहां स्पष्ट कह दिया। मैं चाहता हूं कि आर्यसमाज उन कठिनाइयों को महसूस करे, और उनको हल करे। हमें चाहिये कि हम एक नतीजे पर पहुंचें। कठिनाइयों का जबाब हमारी तरफ से एक होना चाहिये। आर्यसमाज के सिद्धान्तों के विषय में किसी को सन्देह नहीं, सिद्धान्त अटल है। हमें विचार में एक दूसरे की जीत का ख्याल छोड़ देना चाहिये। मित्र होकर कठिनाइयों को सोचें।

व्यक्तित्व को लेकर विचार में प्रवृत्त नहीं होना चाहिये। मुझे जीतने या हारने का सवाल नहीं है, पर यदि कोई दूसरा जीतना चाहे, तो उसे जीतने भी नहीं देता। मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी कि यह सिद्ध हो जाय कि यास्क वेद में इतिहास नहीं मानता। मैं सब-कमेटी के हक में हूं। उसे वक्त दिया जाना चाहिये।

श्री प्रधान जी—मेरा मतलब था कि निरुक्त को छोड़ कर मन्त्रों का अर्थ निश्चित हो जाये। अब वह कमेटी यही करे। नैरुक्त रीति से जो अर्थ इतिहास से रहित हो, उससे आर्यसमाज को लाभ हो। जो ला० देवीचन्द ने कहा वह भी ठीक है। यदि कमेटी सभा या समाजों के साधन इजाजत देते हों, तो वह हो जाय। अब पं० भगवद्दत्त जी बोलें।

श्री ला० देवीचन्द जी—मैं आपसे Request करूंगा कि आप Sub-Committee की Scheme को जरूर Workout करें।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—मैं कमेटी में तब भाग लूंगा, यदि कसौटी ऋषि दयानन्द को माना जाय।

श्री ला० देवीचन्द जी—उसका हम निश्चय करेंगे।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मैं संक्षेप से कहूंगा। पं० चारुदेव जी को व्याकरण का बड़ा जोश है, मुझे नहीं है। मैंने मध्यकालीन प्रयोग ऋषियों के अनुसार किया। महर्षि व्यास ने आदिकालीन प्रयोग किया है। मन्त्र में 'तुर्वश' शब्द है। मैकडानल ने जहां-जहां यह शब्द आया है, वह स्थल इकट्ठे कर दिये हैं। यह शब्द कहीं द्विवचन में आया, कहीं पञ्चजनों=मनुष्यों के साथ आया है। महाभारत में तुर्वश और यदु आदि जातियां शर्मिष्ठा के विवाह से ययाति की संतानें थी, परन्तु ययाति से पहिले वेद था, विवाह से पहिले उसने कहा है कि ब्रह्मचर्य से मैंने सारा वेद पढ़ा है—**ब्रह्मचर्य-श्रुतिपथंगतः**' ॥ महा० आदि० अ० ७५॥ उस समय तुर्वश आदि उत्पन्न नहीं हुये थे। आप या तो यह कहें कि ये मन्त्र वेद में पीछे से आये हैं या महाभारत में यह श्लोक पीछे से डाले गये हैं।

पं० राजाराम जी के निरुक्तानुवाद की भूमिका में लिखा है—

वृषो हि भगवान् धर्मःख्यातो लोकेषु भारत। नैघण्टुक पदाख्याने विद्धि मां वृषमुत्तमम्॥
कपिर्वराहः श्रेष्ठश्च धर्मश्च वृष उच्यते। तस्माद्वृषाकपिं प्राह कश्यपो मां प्रजापतिः॥

आपके इस पक्ष से यह पक्ष सिद्ध है कि निघण्टु का कर्ता कश्यप है। उसके समय को जानने का साहस नहीं किया गया। उसमें 'तुर्वश' शब्द मनुष्य का पर्याय दिया गया है।

पं० विश्वबन्धु जी ने एक बात कल कही थी कि सायण कुमारिल शंकर और जैमिनि व्यास आदि का Interpretaion का System Unhistoric और Unscientific है और Progressive है, मैं इसे नहीं मानता। जब मन्त्र भूले; फिर उनका जिसने दर्शन किया, उस ऋषि का नाम ऊपर लिख दिया। जो इतिहास मानते हैं, मानेंगे कि उन्होंने मन्त्र बनाये। यह पराशर ऋग्वेद के कितने ही मन्त्रों का ऋषि है। उसका पुत्र व्यास मन्त्रों को नित्य कहता है। पराशर बनाये, और

उनका लड़का व्यास वेद को नित्य लिखता जाये, यह नहीं हो सकता। क्योंकि वह ऋषि-मुनि इतने भूठ नहीं थे। इन्हीं व्यासादि ऋषि मुनियां के आधार पर वेदार्थ करना है। मैंने 'मंत्रायणी' के चार शब्द पेश किये थे कि कोई इनका अर्थ करे। यदि आप भी इनका अर्थ करेंगे, तो व्याकरणादि का आश्रय अवश्य लेना पड़ेगा। स्वामी जी ने इतिहास का खण्डन किया, और वह Most Successful author हुये हैं। उन्होंने जो प्रतिज्ञा की, उसी के अनुसार अर्थ किये।

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी—आर्यसमाजी नहीं कह सकता कि वेद में इतिहास है।

श्री प० ब्रह्मदत्त जी—कमेटी के विषय का विचार बड़ा अच्छा है। पर इतना अवश्य कहूंगा कि पोचापोची Compromise ठीक नहीं। कमेटी यदि ऋषि दयानन्द की कसौटी को मानकर चलेगी, तो उसमें शामिल हो जाऊंगा, अन्यथा नहीं। जहां प्राइवेट केरेक्टर और पब्लिक केरेक्टर अलग अलग हों, वहां कैसे कार्य चल सकता है ? एक तरफ ब्राह्मण की गौ को न मारो, औरों की मार लो, तो कैसे समझौता हो। हां मैं कहता हूं कि, मुझे चाहे चाणक्य कहो या चाहे कुछ और, जो महर्षि दयानन्द के विरुद्ध कहेगा, उसका मैं जोर से खण्डन करूंगा। क्योंकि मैं ऋषि दयानन्द को सत्य मानता हूं।

श्री ठाकुर अमरसिंह जी—वैदिक इतिहास के सम्बन्ध में मेरा यह विचार है कि होना तो यह चाहिये था कि मन्त्रों पर विचार होता। कई लोगों ने निरुक्त पर ही विचार चलाया। मैंने कहा था कि इतिहास में दिखाओ कि देवापि ऋष्टिषेण का पुत्र था। पं० विश्वबन्धु जी ने वेद का प्रमाण दिया। इतिहास से सिद्ध नहीं किया। पं० राजाराम जी भी मन्त्रों में इतिहास मानते हैं। अथर्व वेद २।३२।३ में कहते हैं कि—'अत्रि की नाईं कण्व की नाईं जमदग्नि की नाईं हे कृमियो ! तुम्हें मैं मारता हूं। अगस्त्य के ब्रह्म से मन्त्र कृमियों को पीस डालता हूं'।

फिर अथर्व ४।३७।१ पर भी भाष्य में माना है –' तेरे द्वारा कश्यप ने, तेरे द्वारा कण्व ने, और अगस्त्य ने हनन (राक्षसों को मारा)" किया।

अथर्ववेद ४।९।१० पर—"चाहे तू त्रिककुत् का, चाहे यमुना का कहलाता है, दोनों तेरे भले नाम हैं, उनसे हमारी रक्षा कर। हे आञ्जन"।

इससे सिद्ध है कि वेद में इतिहास माना जाता है। पहिले मूल मन्त्रों पर विचार होना चाहिये। और वेदार्थ की कसौटी भी [निश्चित] होनी चाहिये। पं० राजाराम जी ने जो गोवध तथा जूए के अर्थ किये हैं, इससे तो भाष्य न बनाना ही ठीक है।

अथर्ववेद ४।३७ मन्त्र ११।१२ में—"एक कुत्ते की नाईं है, एक बन्दर की नाईं है, एक सारे बालोंवाला कुमार है। देखने के लिये मानो प्यारा होकर गन्धर्व स्त्रियों को चिमटता है. उसको हम यहां से शक्तिवाले ब्रह्म [मन्त्र बल] के साथ नष्ट करते हैं" ॥११॥

"तुम्हारी स्त्रियें निस्सन्देह अप्सरायें हैं। हे गन्धर्वो ! तुम उनके पति हो। हे अमर्त्यो [न मरनेवालो!] भाग जावो, मर्त्यों को मत चिमटो"।

यदि यही कसौटी है, तो कमेटियों से क्या लाभ होगा ? आगे अथर्ववेद ७।५३ पर पण्डित जी शीर्षक देते हैं—द्यूत में जय के लिये—"जैसे बिजली वृक्ष को सदा बिना रोक मारती है, इस प्रकार मैं आज बिना रोक सारे जुवारियों को मार करूं [जीत लूं]" ॥१॥

"जल्दी करनेवाले न जल्दी करनेवाली [काहले न काहले पंजाबी] न रुकनेवाले लोगों का भाग्य सब ओर से इकट्ठा मुझे आ मिले । कृत मेरे हाथ के अन्दर हो" ॥२॥

"कृत मेरे दायें में हाथ है, जय बांयें में रखा है । मैं गऊग्रों को जीतनेवाला, घोड़ों को जीतने-वाला, धन का जीतनेवाला, और सुवर्ण का जीतनेवाला होऊं" ।

अब भला ये मन्त्र दूसरों के सामने आयेंगे, और यदि हमसे पूछेंगे, तो हम क्या जवाब देंगे ?

पण्डित सभा की सातवीं बैठक : ता० २१-५-३१ प्रातःकाल

श्री पं० राजाराम जी—कल तक छः स्थलों में से एक स्थल पर विचार होता रहा, शेष स्थलों पर भी विचार हो जाये । इसलिये उनका भी निर्देश कर देता हूं ।

'इमं मे गङ्गे यमुने सरस्वति शतुद्रि स्तोमं सचता परुष्ण्या ।
असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये शृणुह्या सुषोमया' ॥ ऋ० १०।७५।५॥

यास्क इस पर 'विपाट्' की व्याख्या में कहते हैं—

'आर्जीकीयां विपाडित्याहुः, ऋजूकप्रभवा वर्जु गामिनो वा, विपाट् विपाटनाद्वा विपाशनाद्वा विप्रापणाद्वा, पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः, तस्माद्विपाडित्युच्यते पूर्वमासीसिञ्जरा ॥ निरुक्त ९।२६॥

क्योंकि जब वसिष्ठ मरने लगा था, तब उसने अपने आपको फांसों में जकड़कर नदी में फेंक दिया । उस नदी ने क्या किया ? उसके पाशों को काटकर किनारे पर रख दिया, तब उसका नाम 'विपाट्' हुआ । पहले उसका नाम उरुञ्जिरा था ? इसका मतलब है कि भाषा की दृष्टि से यह नाम था । महाभारत में भी कहा है—

'सोऽपश्यत सरितं पूर्णां प्रावृट्काले नवाम्भसा' । आदि पर्व अ० १७७।२॥

अथ छित्त्वा नदी पाशांस्तस्यारिबलसूदन । स्थलस्थं तमृषिं कृत्वा विपाशं समवासृजत् ॥
उत्ततार ततः पाशैर्विमुक्तः स महानृषिः । विपाशेति च नामास्या नद्याश्चक्रे महानृषिः ॥
आदि पर्व ११७ अ० १७७ श्लो० ५।६॥

इससे ख्याल होता है कि वेद में इतिहास है । इसमें कहा है कि फांसों के टूटने से वह ऋषि निकल गया । तब उस ऋषि ने यह नाम रखा । एक और प्रमाण है—

'प्र तद्वोचेयं भव्यायेन्दवे हव्यो न य इषवान् मन्म रेजति रक्षोहा मन्म रेजति ।
स्वयं सो अस्मदा निदो वधैरजेत दुर्मतिम् । अव स्रवेदघशंसोऽवतरमव क्षुद्रमिव स्रवेत् ॥
ऋ० १।१२९।६॥

यहां 'मन्म रेजति' को दोहराया गया है। यहां यास्क लिखते है—'अभ्यासे भूयांसमर्थं मन्यन्ते' [नि० १०।४२] अभ्यास में जब अधिक अर्थ को समझते है, तब दोहराया जाता है। यथा 'अहो दर्शनीयः अहो दर्शनीय इति' [नि० १०।४२] इसी तरह यहां भी। आगे यास्क कहता है—"तत्परुच्छेपस्य शीलम" [निरुक्त १०।४२]। यह परुच्छेप ऋषि का शील है कि वह सूक्तों में पदों को दुहराता है। इससे प्रतीत होता है कि वह इस मन्त्र को परुच्छेपकृत मानता है, ईश्वरकृत नहीं। यह भी एक सिद्धान्त है कि इतिहास होते हुये भी वेद ईश्वरीय है। परन्तु यास्क के ढंग से प्रतीत होता है कि वह वेद को ऋषिकृत मानता है।

स्कन्द की बाबत कहा गया है कि वह मानता है कि वेद में इतिहास नहीं, परन्तु यह बात ठीक नहीं है। मैं पहले कह चुका हूं कि वह इतिहास मानता है। जो पक्ष स्थापन किये गये है, वह वेद के श्रद्धावान् लोगों ने स्थापित किये हैं। जैसे मीमांसक कुमारिल आदि वेद को ईश्वर का रचा हुआ नहीं मानते, किन्तु अनादि मानते है। दार्शनिक भाव बड़े गहरे है। उन्होंने पूर्व पक्ष स्थापन किया। जैसे—'बबरः प्रावाहणिरकामयत्' प्रवाहण के पुत्र बबर ने कामना की। यह तैत्तिरीय ब्राह्मण [७।१।१०।२] का प्रमाण है। वह ब्राह्मणों को भी वेद मानते हैं, किन्तु आर्यसमाज ब्राह्मणों को वेद नहीं मानता। इसलिये आर्यसमाज की ओर से यह पक्ष पेश नहीं किया जा सकता।

वह मानते है कि—"विधिना त्वेकवाक्यत्वात्स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः" [१।२।७] इसमे वह अर्थवाद दिखाते है। जहां अर्थवाद पाया जाता है, वहां स्तुति या निन्दा के लिये पाया जाता है। मस्लन यज्ञ में दक्षिणा देने के मन्त्र में इतिहास आया, तो वहां उसका मतलब उस विधि की स्तुति के लिये ही है, चाहे इतिहास हो या नहीं। अर्थवाद तीन प्रकार का कहा गया है—बनावटी, प्ररोचनार्थं, भूतार्थवाद। इनमें भूतार्थवाद भी माना गया है। यह बात हुई है, परन्तु किसी बात में रुचि दिलाने के लिये वह इतिहास दिखा दिया जाता है, इतिहास दिखाने के लिये नहीं। जैसे कुरुङ्ग राजा भी मीमांसकों के मत में भूतार्थवाद होगा, इसी प्रकार से नित्य पक्ष माना है।

स्कन्द स्वामी भी इन कल्पित और भूतार्थवाद को माननेवाला था। वह कहता है—"आर्ष्टिषेण इति भविष्यद्वृत्त्या व्यपदेशो भूतवृत्त्या च" [स्क० नि० टीका] अर्थात् वह आगे भी होगा और पिछले कल्प में भी हुआ। इसी प्रकार से 'कुरुङ्ग' राजा पिछले कल्प में भी हुआ था, उसने दान दिया था और आगे भी होगा। और उसके दान की स्तुति भी होगी। वेद किसी एक कुरुङ्ग के साथ बधा हुआ नहीं।

"देवापिश्च शन्तनुश्च कौरव्यौ कुरुवंश-प्रभवौ भीमसेन-पुत्रौ भ्रातरौ बभूवतुः। स शन्तनुः कनीयान् ज्यायसि देवापौ सति आत्मानं राज्ये प्रजाभिरभिषेचितवान्। देवापिस्त्वग्दोषापदेशेन राज्यादवरोपितो वैराग्यात्तपः प्रतिपेदिरे। स च किल च्यवननामापरनाम्नि ऋषिषेणे ब्रह्मचर्यमुवास। स गुर्वनुग्रहात्तेनैव शरीरेण वीतहव्यवद्विश्वामित्रवच्च ब्राह्मणो बभूव। ततोऽस्मिनन्तरं शन्तनो राज्ये द्वादशवर्षाणि देवो न ववर्ष। तमूचुः मौद्गल्यप्रमुखा ब्राह्मणाः। किमूचुः ? अधर्मस्त्वया चरितः, ज्येष्ठं भ्रातरम्तरित्यातिक्राम्याभिषेचितम्, अभिषेचनमात्मन कारितमित्यर्थः। तस्मात्ते देवो न वर्षतीति। स शन्तनुरेवमुक्तो देवापिं शिशिक्ष। शिक्षतिर्दानकर्मा तेन चात्र याच्ञा-

पूर्वकत्वाद्दानस्य स्वकारणभूतायाच्ञा लक्ष्यते सामर्थ्यात् । तेनैतदुक्तं भवति शिशिक्ष याचितवान् ।"

यह दोनों देवापि और शन्तनु कुरुवंशी भीमसेन के पुत्र थे। देवापि को कोई चमड़े का रोग था। उसे राज्य से गिरा दिया गया। वह च्यवन दूसरे नामवाले ऋष्टिषेण के पास तप करता था। वह वीतहव्य और विश्वामित्र के समान ब्राह्मण हो गया। उसके बाद शन्तनु के राज्य में बारह साल तक मेघ नहीं बरसा। उसको मौद्गल्य प्रमुख ब्राह्मणों ने कहा कि बड़े भाई को अतिक्रमण करके तुमने राज्य लिया है, इसलिये मेघ नहीं बरसता। इस पर उसने देवापि के पास जाकर राज्य लेने की प्रार्थना की। तब देवापि ने कहा कि मैं तेरा पुरोहित बन सकता हूं। इसके बाद उसने पुरोहित बन कर यज्ञ कराया। तब राज्य में मेघ बरसा। इससे तात्पर्य निकलता है कि राज्य बड़े भाई को मिलना चाहिये। यदि राजा धर्म का अतिक्रमण करेगा, तो वह अपराधी होगा, पापी बनेगा, और उसे फल अवश्य मिलेगा। इस तात्पर्य को दिखलाने के लिये मन्त्र में यह इतिहास है। इस प्रकार यह नित्यवाद कहता है।

इसी प्रकार वेदान्त में माना है—

'युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा' ।। [वेदा० शां० भा० १।३।३०]

उन्होंने इतिहास समेत वेदों को पाया। इसके साथ स्मृति भी प्रमाण दी है—

'तेषां यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे ।
तान्येव ते प्रतिद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः' ।। [वेदान्त शां० भा० १।१।३०]

[श्री पं० भगवद्दत्त जी बीच में—वेदान्त के किस सूत्र में है ?]

[श्री पं० राजाराम जी बीच में—शङ्कराचार्य ने १।३।२६,३० में वेदान्त में यह प्रमाण दिया है।]

श्री पं० विश्वबन्धु जी बीच में—वेदान्त के बनानेवाले हैं शङ्कराचार्य ।]

श्री पं० राजाराम जी—'ऋषीणां नामधेयानि याश्चवेषु दृष्टयः ।
शर्वर्यन्ते प्रसूतानां तान्येवैभ्यो ददात्यजः ।।

[वेदा० शा० भा० १।१।३०]

प्रलय के अन्त में वह ब्रह्म ऋषियों के नामादि फिर देता है। इस सारे युग की उत्पत्ति फिर होती है। इनकी दृष्टि में नित्य इतिहास का मतलब यह है। यह ऐसे मानकर वेद को नित्य मानते हैं। सायणादि का तात्पर्य भी इसी नित्य पक्ष से है।

वैदिक वाङ्मय का इतिहास भाग २ पृ० ६८ में लिखते हैं—"कि दुष्यन्त और भरतादि शब्दों को हम जातिवाचक भी नहीं मान सकते। क्योंकि 'दुष्यन्त से वहां भी वही पौरुषेय की आपत्ति आयगी। जिन नवीन मीमांसकों ने वेदों में विश्वामित्र आदि शब्दों को जातिवाचक माना है, उन्होंने भी अपौरुषेय वेदों में ही माना हैं। और हम तो इस कल्पना को भी निराधार मानते हैं।" इसी प्रकार यास्क के मत में इतिहास वेदों में वर्तमान है। मुझे इसका आशय यह मालूम होता है कि ऋषियों के शब्द अपने हैं, और ज्ञान अपना। यास्क ने कहा है— [क्रमशः]

"साक्षात्कृद्धर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरेभ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् संप्रादुः" [नि० १।२०]। "ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता" [नि० १०।१०]। अर्थात् यास्क मानता है कि वेदों में शब्द ऋषियों के हैं, अर्थ उनको परमात्मा द्वारा प्रतिभात हुआ। इसी प्रकार 'अनुक्रमणिका' और 'बृहद्देवता' आदि में मन्त्रों के प्रकट होने के इतिहास दिये हैं। जैसे—"त्रितं कूपेऽवहितमेतत्सूक्तं प्रतिबभौ" [नि० ४।६]। त्रित को कुंए में गिरे हुये को यह सूक्त मिला।

जहां-जहां यास्क ने इतिहास दिया है, वह उसे मानता है। इस पक्ष को लेकर भी एक पक्ष यह है कि यास्क अनुक्रमणी और बृहद्देवता में वेदों में से जो धर्म का निषेध तथा विधियों को ऋषियों ने प्राप्त किया है, दूसरों को उन्होंने कल्पित तथा सच्ची घटनाओं द्वारा उपदेश दिया है। यास्क इतिहास तथा नैरुक्त पक्ष में भेद दिखलाने के लिये देते हैं—"तत्को वृत्रः? मेघ इति नैरुक्ताः, त्वाष्ट्रोऽसुर इत्यैतिहासिकाः" [नि० २।१६]। जहां उसे भेद अभिप्रेत होता है, वह भेद कर देता है। जहां भेद नहीं दिखाया, वहां उसे भी इतिहास अभिप्रेत है। जैसे परिव्राजकों का पक्ष दिखाया। चाहे वहां इतिहास का कोई झगड़ा नहीं। इसी प्रकार याज्ञिकों का पक्ष दिखाया है। जहां अन्यत्र मन्त्रों के अर्थ को अभिव्यक्त करना होता है, वहां मन्त्र की उत्पत्ति का इतिहास दिखलाया है। यास्क का यह पक्ष भी "वह इतिहास को नहीं मानता' नहीं निकलता, परन्तु फिर भी वह वेद को आर्षज्ञान मानता है।

इसी प्रकार अनुक्रमणी आदि भी इतिहास मानते हुये वेद को आर्षज्ञान मानते हैं। यह लोग वेदों में वैसी ही श्रद्धा रखते हैं। मैं समझता हूं कि इतिहास सिद्ध होने पर भी आर्यसमाज और वैदिक धर्म उड़ नहीं जायगा, हमें संकुचित नहीं होना चाहिये। यदि कोई इतिहास मानेगा, तो वह आर्यसमाज से परे नहीं हो जायेगा, घबड़ाना नहीं चाहिये। स्वामी जी ने जैसे वेदों पर बड़ा लिख कर भी नियमों में कहीं नहीं लिखा कि वेद अपौरुषेय हैं। उन्होंने वेदभाष्य करते हुये "वामदेवम् वामदेवेन दृष्टं"। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि स्वामी जी को इस पक्ष से द्वेष नहीं है, या उन्हें स्वयं आपौरुषेय अभिप्रेत है। चेष्टा होनी चाहिये कि हम स्वामी जी के इस पक्ष को सिद्ध करें। हमें घबराना नहीं चाहिये।

कल मेरे भाष्य के सम्बन्ध में कहा गया था। वह मैंने केवल अक्षरार्थ किया है। वह केवल भाषा में पदपाठ है। सिर्फ भेद इतना ही है कि संस्कृत की विभक्तियां हिन्दी में रख दी गई हैं। मेरे सामने कई कठिनाइयां हैं, जिन्हें मैंने वैसे ही छोड़ दिया है। मैंने कई जगह अपनी ऊहा से उत्तम अर्थ किये हैं, जो आर्यसमाज की पुष्टि करते हैं। कल पं० गुरुदत्त जी ने कहा था कि विश्वामित्र गृत्समद आदि प्राण के नाम हैं। इससे इतिहास के साथ ऋषि भी उड़ गये। आर्यसमाज की ओर से एक उत्तर होना चाहिये।

श्री लाला देवीचन्द जी—अपना पक्ष भी आपको रखना चाहिये।

श्री पं० राजाराम जी—मेरा पक्ष समाज का पक्ष है। अगर सिद्ध हो जाय, तो दूसरा पक्ष भी मान लूंगा। मैं वैदिक हूं, वेदों में जो बात सिद्ध होगी, उसके सामने सिर झुकाऊंगा।

श्री प्रधान जी—यह इन्तजामिया पहलू है कि जो इस बात को मानता है, वह समाज में रह सकता है या नहीं ? इस बात का इस परिषद् में निश्चय नहीं करना। पण्डितसभा का यह काम है कि पेश किये हुये विचारों पर राय कायम करे। परन्तु यह जो असली बात थी कि वेद के अन्दर इतिहास है या नहीं, पं० राजाराम जी ने कहा कि वह स्वीकार करते हैं कि वेद में इतिहास नहीं हैं।

श्री पं० राजाराम जी—मैंने कहा है कि जो आर्यसमाज के सिद्धान्त हैं, उन्हें मैं मानता हूं, वह सत्य है। यदि विचार से कुछ और सत्य सिद्ध हो जाये, तब उसे मैं मान लूंगा। कई कठिनाइयों का हल मैंने किया है। जो सत्य सिद्ध होगा वह मेरा पक्ष होगा, वही आर्यसमाज का होगा। 'संस्कार विधि' में मन्त्रों के अर्थों का अनर्थ किया है। यद्यपि मैं यह प्रेस की गलतियां समझता हूं। परन्तु किसी दिन इनका भार भी हमारे ऊपर पड़ेगा। यदि सत्य सिद्ध हो जाय, तो मैं मानूंगा।

श्री लाला देवीचन्द जी—पं० राजाराम जी ने फरमाया कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्त के साथ सहमत हैं। जैसा स्वामी जी ने कहा है कि जो मैंने अपनी बुद्धि अनुसार वेद से समझा है, वह लिख दिया है। यदि कुछ और सिद्ध हो, तो यह आवश्यक नहीं कि मेरी ही बात मानें। यह बात हम भी मानते हैं। सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्याग करने के लिये सदैव उद्यत रहना चाहिये। अभी तक तो सब समाज के सिद्धान्तों को ही सत्य मानते हैं। यदि इतिहास सिद्ध हो जाय, तो मान सकता है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—विचार हो ही नहीं सकता, जब तक भेद न हो। यह संशय के आधार पर विचार है। निरुक्त अनुक्रमणी तथा अन्य सब आर्ष ग्रन्थों के आधार पर झलक इतिहास की पड़ती है। इसी के विचार के लिये सभा बैठाई गई है। उनको भी संशय है, उनकी स्टडी के अनुसार उनके दिल में भी शंका पैदा हो गई है।

श्री लाला देवीचन्द जी—शंका होने पर भी सिद्धान्त वही है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—करोड़ों शंकाओं के होते हुये भी सिद्धान्त मानना यह बात विरुद्ध है।

श्री महात्मा जी—पं० विश्वबन्धु जी का भाषण पं० राजाराम जी के आशय के विरुद्ध है। जैसे एक आदमी ईश्वर को मानता है, परन्तु दलीलें दोनों पक्षों की सुनता है। एक गलत दलील है। उसकी गलती को वह हल नहीं कर सकता। इसका मतलब यह नहीं कि उसका विश्वास ईश्वर से ढीला पड़ गया। निरुक्त का सवाल छोटा पड़ गया, सिद्धान्त का खयाल रखना चाहिये। पं० विश्वबन्धु जी से पूछता हूं।

[**श्री लाला देवीचन्द जी**—मुझे संशय है कि पं० विश्वबन्धु जी यह स्वीकार कर रहे हैं।]

[**श्री पं० विश्वबन्धु जी**—मैं कान्फ्रेंस में इसीलिये बैठा हूं।]

महात्मा जी—यह बात ठीक नहीं कि सब को शंकायें नहीं।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मुझे Inrusistency सी प्रतीत होती है। एक ही विषय में शंका और विश्वास नहीं हो सकते। मैं वेद को अपौरुषेय मानता हूं, पर मुझे ईश्वर की सत्ता पर शक है, यह बात कैसे हो सकती है ? पं० बहादुरमल जी का मांस प्रश्न खड़ा है, आज तक उनके मांस-प्रश्न का जवाब नहीं दिया गया। धर्म के इतिहास में ऐसी शंकायें रहने से विश्वास टूट जायगा।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—शास्त्र के विचार से जो मैंने कहा था ठीक है। दिमाग एतराज करता है, पर हृदय नहीं मानता—**'हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मः तन्निबोधत'। मनु० २।१॥**

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मेरा दिल चाहता है कि इतिहास सिद्ध न हो, किन्तु दिमाग में शक है।

श्री प्रधान जी - यदि आपके दिमाग में शक है, तो आर्यसमाज के विद्वानों से मिल कर पूछें। जैसे ब्रह्मदत्त जी ने कहा था कि हम चाहते हैं कि स्वामी का पक्ष सिद्ध हो। यदि आप भी चाहते हैं, तो ठीक है। यदि आपको ठीक प्रतीत होना हो, तो अच्छा। यदि आपको ठीक प्रतीत न होता हो, तो न आप आर्यसमाज से बंधे हुये हैं, न आर्यसमाज आपसे बंधा है। हां, सत्य के विचार में सब बंधे हुये हैं। जो आपने इन्तजामी मामलों का जिकर किया, वह शांया नहीं है। हां विचार के लिये आप भी ब्रह्मदत्त जी भी और भी पण्डित इकट्ठे हों, विचार हो जाय। जैसे पं० राजाराम जी ने कहा कि वह स्वामी जी के सिद्धान्तों को इस विषय में मानते हैं, आप भी ऐसा ही कह दें। मांस खाने पर जो एतराज आपने मेम्बरों से किया, मांस खाने की बात कहां से की, यह बात असंगत है [अगर विश्वबन्धु जी को निकालने का प्रस्ताव होता, तब आप इस विषय में कह सकते थे। यह बात भी यहां करने की आवश्यकता नहीं।]

श्री पं० विश्वबन्धु जी--यह बात ठीक नहीं। मेरा विचार यह नहीं कि आप अन्याय करते हैं।

महात्मा जी– आप पर टीका टिप्पणी नहीं करते। आप कह दें कि मैं वेद में इतिहास नहीं मानता, पर विचार करना चाहता हूं।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैंने पहले ही कह दिया कि मेरा दिल चाहता है कि इतिहास सिद्ध न हो, परन्तु दिमागवाला भाव प्रबल हो रहा है। दिमाग का भेद होना सोसाइटी के जीवन का चिह्न है। मैंने कई जगह पर वेद-सन्देश में स्वामी जी से विरुद्ध अर्थ भी किये हैं, परन्तु उद्देश्य एक ही है। शंकायें सब के अन्दर पैदा हो रही हैं। पं० ब्रह्मदत्त जी के विषय में मैं कुछ नहीं कहता।

श्री पं० राजाराम जी--जब पं० विश्वबन्धु जी कहते हैं कि मेरी इच्छा वही है, वह यत्न कर कर रहे हैं। उनका सिद्धान्त समाज के साथ है।

जी प्रधान जी—जब तक वे स्वयं नहीं कहते, हम कैसे मान लें ?

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं इस बात का अधिकार किसी को नहीं देता। मुझे शंका है, मैं दियानतदारी से कहता हूं।

श्री बहादुरमल जी—हमें दिल की तरफ नहीं आना चाहिये। सभा विचार के लिये ही है। सेन्टीमेन्ट को अपील करने की आवश्यकता नहीं। शंका तथा निर्णय दोनों परस्पर विरुद्ध हैं।

महात्मा जी—मैं इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं हूं।

श्री ठाकुर अमरसिंह जी- पण्डित जी कहते हैं कि मैं किसी को अधिकार देना नहीं चाहता। बल देकर कहलवाने या न कहलवाने का कुछ लाभ नहीं। इस बात को बन्द कर देना चाहिये। एक आदमी युक्ति प्रमाण देता है विरुद्ध, और जबानी कह देता है कि मैं सब मानता हूं, इसका क्या लाभ? किसी आदमी को इससे अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहिये। सिद्धान्त न माननेवाले इसी तरह लाभ उठा सकते हैं।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी—यह जो विचार हो रहा है, इससे किसी निश्चय पर नहीं पहुंच सकते। यह विचार पर ही आघात हो रहा है, तो निश्चय कैसे होगा? यह नहीं होना चाहिये।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—पं० विश्वबन्धु जी कह रहे हैं कि '**स्पष्टवक्ता न दोषभाक्**'। मैं इसलिये उनकी प्रशंसा करता हूं। जो मन से कुछ और, और ऊपर से कुछ और हो, वह मनुष्य हानिकारक होता है। इससे उनके लिये मेरे हृदय में बहुत प्रेम का भाव है। पं० राजाराम जी ने कहा कि नित्य इतिहास का स्वरूप क्या है? उन्होंने स्कन्द को भी पेश किया। पण्डित जी का यह कहना कि वेद को भी नित्य मानें, और इतिहास को भी मानें, तब भी हमारा कुछ नहीं बिगड़ता। यह बात ठीक नहीं है। दुर्गादि ने कहा है कि अर्थ को प्रकट करने के लिये इन आख्यानों को साथ जोड़ कर मन्त्रार्थ बताते हैं। यह केवल स्पष्ट करने के लिये मन्त्रार्थदृष्टा ऋषि ने आख्यान जोड़ कर समझाया है।

यास्क लिखता है—"**ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यान-संयुक्ता**" [नि० १०।४६]। इसी तरह "'**तत्रोपमार्थेन युद्धवर्णा भवन्ति**" [नि० २।१६]। इसी प्रकार जैसे मथुरा शताब्दी के उत्सव पर "**मथुरा का अशान्त यात्री**" शीर्षक से एक लेख लिखा था। उसमें लेखक ने लिखा था कि शताब्दी के पिण्डाल में स्वामी दयानन्द और स्वामी विरजानन्द का वार्तालाप। और स्वामी विरजानन्द ने आर्यसमाजियों को कहा था कि तुम मथुरा से अपने डेरे डण्डे उठाओ। तुम्हारा यहां आने का कोई अधिकार नहीं। क्योंकि मैं जिन अनार्ष ग्रन्थों पर जूते लगवाता था, तुम वही पढ़ते-पढ़ाते हो। कई लोग कालान्तर में इसको ऐतिहासिक घटना मानने लग पड़ें, तो, यह सच्चा इतिहास सिद्ध नहीं हो सकता।

'स्कन्द ने कहा है—"**सुख-प्रतिप्रत्यर्थमितिहासमाचक्षते आचार्याः**" [पृ० ७१]। आगे पृ० ६३ पर लिखा है—'**सर्वे इतिहासाश्चार्थवादमूलभूताः**'। यहां कहा है कि सारे इतिहास अर्थवाद मूलभूत हैं। यदि कुरुक्ष है, तो भी वह कहता है कि अर्थवाद मूलभूत है। पुनः आगे कहता है—'**तस्मादसति युद्धे कल्पनैषा**' [पृ० ६३], और पृ० ३४६ पर भी यही कहा कि—'उपचार से यह कल्पना है'। इसी प्रकार ऋग्वेद में मन्त्र आया है—"**माया इत्सा ते यानि युद्धान्याहुः**" ऋ० १०।५४।२। इसी

प्रकार मायारूप में शतपथ में—"**तस्मादाहुर्नैतदस्ति यद्देवासुरम्**:" श० ११।१।६।९। 'दुर्गादि' का भी यही भाव है।

तैत्तिरीय आरण्यक अनु० प्रपा० ९ पर 'भट्टभास्कर' लिखता है—"**ब्राह्मणादीनि कर्मचोदना**·· **तच्छेषश्चार्थवादा निन्दा प्रशंसा परकृतिः पुराकल्पश्च ब्राह्मण-ग्रहणेन गृह्यन्ते**··**इतिहासाः परकृतयः देवासुराः संयत्ता आसन् इत्यादयः**।" 'दुर्गाचार्य' लिखते हैं—"**इतिवृत्तं परकृतार्थवादरूपेण**···**स पुनरयमितिहासः सर्वप्रकारो हि नित्यमविवक्षितस्वार्थः, तदर्थप्रतिपत्तॄणामुद्देशपरत्वात्**"। नि० १०।२६ [पृ० ५८]। वदतो व्याघात वहां होता है, जहां वेद में अनित्य व्यक्ति का इतिहास मानें। आप पुस्तकों में गोवध लिखते हैं, और बाहर वेद की महिमा गाते हैं। यह क्या वदतो व्याघात नहीं है ? और देखिये निरुक्त २।१६ पृ० १७७ "**उपमार्थेन रूपकल्पनया युद्धवर्णा भवन्ति, युद्धरूपकाणीत्यर्थः**"। आगे पृ० ३१५ पर दुर्ग लिखता है "**मन्त्रार्थ-परिज्ञानादेव ह्यग्नेराध्यात्माधिदैवाधिभूताधियज्ञेष्ववस्थानं याथात्म्येन दृश्यते**"। उर्वशी अप्सरा आदि की कथा चला कर विद्युत् अर्थ किया है।

स्कन्द ने भी यही अर्थ किया है। 'शत्रुघ्नाचार्य' ने '**अप्सरा**' का '**रश्मयः**' अर्थ किया है। [पृ० १५१]। पृ० ३६९ [?] पर लिखा है—"**स्तुत्यादिकमुपचारिकं रूपकमात्रमित्यर्थः**"। इसी प्रकार आगे नैरुक्त याज्ञिक अर्थ करते हुये पृ० ६३२ पर 'दुर्ग' लिखता है—"**दुर्बला हि समाख्या**"। दुर्ग ११।२५ सरमा और देवशुनी के सम्वाद में लिखता है—"**देवशुनी इन्द्रेन प्रहिता इति निदान-प्रख्यापनं मन्त्रार्थाभिव्यक्तये**"। 'स्कन्द' का भी वदतो व्याघात नहीं। उन्होंने भी अनेक जगह पर नित्यपक्ष का समर्थन किया है। निरुक्त के ६ अध्यायों पर जो भाष्य छपा, उसमें २१ जगह पर नित्य पक्ष की योजना की। और अन्त में लिख दिया—'**एवमन्यत्रापि योजना कर्तव्या**'।

इसी प्रकार 'वररुचि' ने भी "**औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयो नित्यत्व-विरोधात्। परमार्थेन तु नित्यपक्ष एव इति नैरुक्तानां सिद्धान्तः**" [४।१४]। 'स्कन्द' ने ८ आठ जगह पर, जहां पर कि मूल निरुक्त ने इतिहास नहीं दिखाया, वहां पर अर्थ स्पष्ट करने के लिये इतिहास बतलाया है। महाभाष्य में कहा है—'**अचेतनवदुपचारः**' अचेतन में चेतनों की तरह से उपचार होता है। 'वेङ्कटमाधव' जो सायण से पहिले हुए हैं, कहते हैं—"**ऋषीणां नामगोत्राणि दृष्ट्वा भ्राम्यन्ति लौकिकाः**" ऋ० प्र० ५। प्र० १। 'उद्गीथ' ने '**इमं मे गङ्गे यमुने**' [ऋक् १०।७५।५] इस मन्त्र को इस गङ्गा यमुना पर नहीं घटाया।

'मीमांसातन्त्रवार्तिक' पृ० १३४ पर—

"**प्रजापतिस्तावत् प्रजापालनाधिकारात् आदित्य एवोच्यते। स चारुणोदयवेलायामुषसमुद्यन्नभ्यैत्, स तदागमनादेवोपजायते इति तद्दुहितृत्वेन व्यपदिश्यते। तस्यां चारुणकिरणाख्यबीजनिक्षेपात् स्त्री-पुरुषयोगवदुपचारः। एवं समस्ततेजः परमैश्वर्यनिमित्तेन्द्रशब्दवाच्यः सवितैवाहनि लीयमानतया रात्रिरहल्याशब्दवाच्यायाः क्षयात्मक-जरण-हेतुत्वात् जीर्यत्यस्मादनेनैवोदितेन इत्यादित्य एव अहल्याजार उच्यते, न तु परस्त्री-व्यभिचारात्**"।

वेदांगों के जाने बिना वेदार्थ करना अनधिकार चेष्टा है। वास्तव में हम में सम्पूर्ण विद्या नहीं है। जब तक विद्या अपेक्षित है, तब तक ऋषि दयानन्द का बल पकड़ना होगा। जो भाष्यकार सर्वाङ्ग नहीं जानते, उनको वेद के भाष्य करने का अधिकार नहीं। इस कार्य से समाज को हानि पहुचती है, पोचापाची अच्छी नहीं। दिमाग अपना दूसरों को दे देना ठीक नहीं है। पं० विश्वबन्धु ने Oriental College Magzine में बुलनर को अपना गुरु माना है। पुस्तक Vadic goes as figiues of Biology में सिद्ध किया है कि इन्द्रवरुण त्वष्टा सावित्री आदि दिमाग के भाग हैं। यह बात वेद के तथा वैद्यक के प्रमाणों से सिद्ध की गई है। मैं पूर्णतया इस विषय को नहीं जानता। डा० सत्यकाम जी यहां होते, मैं चाहता था कि आपको अच्छी तरह समझाते। ये लोग तो इस ढंग पर यत्न करते हैं, परन्तु हमारे आर्यसमाजी उल्टा यत्न करते हैं। बने हुये को गिराने की चेष्टा करते हैं। आर्यसमाज और ऋषि दयानन्द के मार्ग को हानि न पहुंचनी चाहिये।

दर्शनशास्त्र के विषय में आर्यसमाज को मुकाबला करना होगा। हम शंकाओं को नहीं रोकते, किन्तु व्यवस्थित होनी चाहियें। ज्योतिष की पुस्तक **'ऋषि रहस्य'** में लिखा है—

"तस्मात्ताराऽरूपाणां वसिष्ठादीनां एवेदं ताराविज्ञानोपयोग्याख्यानविशेषसिद्धमैत्रावरुणित्वं उर्वशीजन्यत्वं मान्यत्वं वा, न तु ब्रह्मणो मानसपुत्राणां मनुष्यविधानाम्। ताराविषयणी सर्वापीयमाख्यायिका ताराविज्ञानोपयोगिनी बालकरोचनार्था बह्वल्पसारामिवैव कल्पिता पूर्वैरिति, नैतावता मनुष्यविर्धषिषु तदाक्षेपः शक्यः कर्तुम्। यत्तु ब्रह्मणो मानसपुत्रस्य वसिष्ठस्य गोतमहोतृके यज्ञे निमिशापदग्धशरीरतया पुनरुर्वश्या द्वितीयं जन्माचक्षते पौराणिकाः, तदपि नामसामान्यादुपसंक्रमिति, तस्य मैत्रावरुणित्वादिधर्मस्य उपपादनार्थं कल्पनामात्रं स्यात्।"

इन रीतियों से मन्त्रार्थ समझना चाहिये। 'बृहद्देवता' और 'सर्वानुक्रमणी' में देवता का भेद हमारी तरफ से कल दिखाया गया था।

'चत्वारि शृङ्गा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ॥ [ऋक् ४।५८।३]

इस मन्त्र का 'पतञ्जलि' ने महाभाष्य में शब्दपरक अर्थ किया है। **'सर्वानुक्रमणी'** और **'बृहद्देवता'** के कौनसे देवता के अनुसार यह अर्थ है ? क्या आप 'सर्वानुक्रमणी' और 'बृहद्देवता' को इस विषय में अन्तिम प्रमाण मानते हैं ? यदि आप मनु तथा अन्य ग्रन्थों को प्रमाण नहीं मानते, केवल वेद को ही मानते हैं, तो वेदार्थ की कसौटी क्या है ? जो कहा गया था—**'वसिष्ठादय अवन्तु नः'** क्या इस मन्त्र को अब वेद से निकाल देना चाहिये ?

ऋषि दयानन्द के प्रति हमारी श्रद्धा क्यों है ? **ऋग्वेद १।४५।३—**

"प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्। अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्।"

इसकी व्याख्या ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार की है—"**(प्रियमेधवम्) प्रिया तृप्ता कमनीया प्रदीप्ता मेधा बुद्धिर्यस्य,** तेन तुल्यः **(अत्रिवत्) न विद्यन्ते त्रय आध्यात्मिकाधिभौतिकादैविकास्तापा**

यस्य, तद्वत् (जातवेदः) यो जातेषु पदार्थेषु विद्यते, सः (विरूपवत्) विविधानि रूपाणि यस्य, तद्वत् (अङ्गिरस्वत्) योऽङ्गानां रसः प्राणः, तद्वत् (महिवत्) महि महद् व्रतं शीलं यस्य [तत्सम्बुद्धौ] (प्रस्कण्वस्य) प्रकृष्टश्चासौ कण्वो मेधावी [तस्य] (श्रुधि) शृणु (हवं) ग्राह्यं देयं अध्ययनाध्यापनाख्यं व्यवहारम् ।"

लोग कहते हैं कि स्वामी दयानन्द खेंचातानी करते हैं वह खेंचातानी के प्रवर्तक हैं। औरों का भाष्य मान लेते हैं, स्वामी जी का नहीं मानते। 'स्कन्द' ने इसी मन्त्र का भाष्य किया है -

"सततप्रवृत्तयज्ञः कश्चिद्यजमानः प्रियमेध उच्यते। तथा भृग्वादयोऽपि यजमानविशेषा एव। भृगु-पञ्चतपः प्रभृतिना तपसा भृज्यमानोऽपि न देहे गार्हपत्योपायित्वादिना, अङ्गारेण बसतीत्यङ्गिरः, अदनाद्भक्षणात्क्षपणाद्रागादीनां दोषाणामित्यत्रिः, विविधं खननाद्वैदार्थवस्तूनां वैखानसः, वैरूप्यात्तपसा विरूपः, यथैतेषां ऋषीणां दर्शनादृषयः प्रस्कण्वः कण्वस्य मेधाविनः पुत्रः एकवाक्यता तु पूर्ववद्योजनीयेति।"

भाई अक्षर के ऊपर अक्षर रखने का क्या लाभ ? निरुक्त के आशय को दूसरे आचार्यों ने भी खोला है। रात्रि और आपः ब्रह्मवाची शब्द हैं, मैं बतलाऊंगा। हमने आपसे पूछा था कि व्युत्पति निमित्त और प्रवृत्ति निमित्त के अनुसार वृक्ष और सुपर्ण क्या हैं। आप गो शब्द को इसके अनुसार बतायें। यास्क ने इतने अर्थ किये, और उसकी व्युत्पत्ति नहीं की। आप बतायें कि आपके निमित्तों के अनुसार यह कैसे ? हमारी ओर से **'नित्ये शब्दार्थसम्बन्धे'** कई बार कहा जा चुका है। शास्त्र की रीति से करना हो, तो मैं तैयार हूं। अन्यथा आप बतायें कि 'अश्व' का अर्थ घोड़ा क्यों है, गधा क्यों नहीं ?

हम ने पूछा था कि 'कुरुङ्ग' का इतिहास दिखाओ। आपकी ओर से कोई उत्तर नहीं मिला। आप वेद में जड़ तथा व्यक्तियों (=चेतन) का इतिहास मानते हैं। आप बतायें कौनसा इतिहास जड़ का और कौनसा व्यक्ति का है ? आप के कुल्हाड़ेवाले अर्थ के सम्बन्ध में बतायें कि वह किस कसौटी से किया है ? और उसका क्या नियन्त्रण है ? पं० बुद्धदेव जी [मीरपुरी] ने वेदार्थ करने के लिये **'श्रुतिलिङ्गादि'** सूत्र द्वारा कसौटी बतादी, और इस प्रकार से आपके अर्थ को असङ्गत दिखलाया। आपका वेद ही प्रमाण है। आप परशु और राजा विशेष्य विशेषण रूप से वेद में से दिखायें। राजा की स्तुतियां आपके कथनानुसार वेद में हैं। उनमें परशु कहां है ? इसलिये हमारा मन्त्रार्थ ठीक है, आपका नहीं। आपके अर्थ में बेहूदगी है। दोनों अर्थ किसी हिन्दू गंवार पांसुलपाद के सामने रखो, वह भी कह देगा कि हमारा वेदार्थ ठीक है। आप परशुपरक अर्थ लगायेंगे, तो **'कुरुङ्गो राजा बभूव'** यह प्रतिज्ञा नष्ट हो जायगी।

पं० राजाराम जी कहते हैं कि मैंने आर्यसमाज की पुष्टि में अर्थ किये हैं। हमने भी ऐसा किया, तो हम पर दोष क्यों ? हमने मन्त्रार्थ व्याकरण की प्रक्रियानुसार किया था। **'स्थूर'** शब्द का अर्थ व्याकरण से विना बहुल का आश्रय लिये एक साल में भी कर के दिखादें। क्योंकि वह तो [बहुल का आश्रय] दयानन्द ने बताया है। जो इतने आचार्यों ने औपचारिक प्रक्रिया से इतिहास

का हल किया है, उसे आप क्यों छोड़ देते हैं? आपके नित्य का क्या अर्थ है? आप भूतार्थवाद' भविष्यार्थ और अनुवादार्थ को स्पष्ट करें। 'सर्वानुक्रमणी' के विषय को भी स्पष्ट कर दें।

श्री प्रधान जी—अब पण्डित विश्वबन्धु जी बोलें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—यदि पं० भगवद्दत्त जी को अब समय न दिया जाय, तब बोलता हूं।

श्री प्रधान जी—आपको जो कहना है कहें, मैं दुबारा समय न दूंगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—कल प्रातः पं० गुरुदत्त जी ने ऋषि देवता आदि का स्वरूप बताया। मुझे उसमें नई बात नहीं प्रतीत हुई। यह सारा शिवशङ्कर को पुस्तक में है। 'ऋषि' का स्वरूप वर्णन करते हुये आपने 'ऐतरेयाण्यक' पढ़ दिया। यह भी मेरे लिये नई बात नहीं था। इन सब उपनिषदों में प्राण की महिमा है। वह प्रकरण प्राण की उपासना का है, वहां प्राण तथा इन्द्रियों का संवाद आया है। वारी-बारी से सब इन्द्रियां शरीर से पृथक् हो गईं, किन्तु इसका कुछ न बिगड़ा। अन्त में जब प्राण निकलने लगा, तब सब इन्द्रियों ने कहा कि महाराज! आपके जाने से हम सब मारी जायेंगी, इसलिये आप यहीं रहें। इस आरण्यक में प्राण की महिमा गाई है। प्राण ऋषि का वाचक नहीं है।

'अयमेव वसिष्ठः, अयमेव भारद्वाजः, अयमेव अत्रिः' इसका मतलब यह नहीं कि वसिष्ठादि प्राण पर्याय हैं। और जो उन्होंने बोला था अधिक ऋचाओंवाले ऋषि, कोई मध्यम ऋषि, यहां पर केवल ऋषियों की कोटियां बतलाई गई हैं। यह प्राण की महिमा अलङ्कार रूप से बतलाई गई है। ऋषियों की सृष्टि में वसिष्ठ है। यह अर्थवाद है, जैसे ऋषियों में वसिष्ठ श्रेष्ठ है, उसी तरह यहां प्राण सबसे उत्तम है। सौन्दर्य को देखने का यत्न करो। इस सौन्दर्य को क्यों खराब करते हो? अगर बात नहीं मानोगे, तो बात उलटी पड़ेगी। जब सूक्त पर लिखा होगा वामदेव ऋषि है, तो प्राण कैसे मन्त्रद्रष्टा होगा, वह तो जड़ है।

आगे आपने विश्वकर्मा भौवन के विषय में कहा कि यहां पर कोई व्यक्ति विशेष नहीं है। Historical person ages नहीं हैं, यह उपाधियां हैं। ऋग्वेद के कई सूक्तों का ऋषि और देवता एक दिया है। जहां विश्वकर्मा भौवन ऋषि दिया है, वह सर्वमेध यज्ञ करनेवाले राजाओं के नामों में से एक विश्वकर्मा भौवन भी है।

"एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण तुरः कावषेयो जनमेजयं पारीक्षितमभिषिषेच। तस्मादु जनमेजयः पारीक्षितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। तदेषाभियज्ञगाथा गीयते, इति। आसन्दीवति धान्यादं रुक्मिणं हरितस्रजम्। अश्वं बबन्ध सारङ्गं देवेभ्यो जनमेजय इति। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण च्यवनो भार्गवः शार्यातं मानवमभिषिषेच। तस्मादु शार्यातो मानवः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे, देवानां हापि सत्रे गृहपतिरास। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण सोमशुष्मा वाजरत्नायनः शतानीकं सात्राजितमभिषिषेच। तस्मादु शतानीकः सात्राजितः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदावाम्बाष्ठ्यमभिषिषिचतुस्तस्मादाम्बाष्ठ्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण पर्वतनारदौ युधांश्रौष्टिमौग्रसैन्यमभिषिषे-

चतुस्तस्माद् युधां श्रौष्टिरीप्रसैन्यः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे। एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेण कश्यपो विश्वकर्माणं भौवनमभिषिषेच। तस्माद् विश्वकर्मा भौवनः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परीयायाश्वेन च मेध्येनेजे" ॥ ऐतरेय ब्राह्मण ८।२१॥

इसी प्रकार यहां 'आम्बाष्ठ्य' का वर्णन है, ऐसे ही और राजाओं का वर्णन है। आगे कश्यप ऋषि ने विश्वकर्मा भौवन को यज्ञ कराया। उसने ख्याल किया कि मैं पृथिवी दान में दे दूं। भूमि बोली—"कोई मनुष्य मुझे नहीं दे सकता। हे विश्वकर्मन् भौवन ! मुझे देने की इच्छा करता है ? मैं जल में डूब जाऊंगी"। इन सब राजाओं का वर्णन निरुक्त में भी आता है।

शतपथ ब्राह्मण में भी विश्वकर्मा भौवन की बाबत लिखा है—

"भूतेष्वात्मानं जुहवानि भूतानि चात्मनीति, तत्सर्वेषु भूतेष्वात्मानं हुत्वा भूतानि चात्मनि सर्वेषां भूताना श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्यैत्तथैवैतद्यजमानः सर्वमेधे सर्वान् मेधान् हुत्वा सर्वाणि भूतानि श्रैष्ठ्यं स्वाराज्यमाधिपत्यं पर्येति" ॥ शत० १३।७।१।१॥

अर्थात् वह आत्मयाजी हो गया। यह मैंने विचार करने की सामग्री दे दी। आप विचार करें। मैंने खण्डन करने का यत्न नहीं किया। विश्वकर्मा व्यक्ति विशेष है या नहीं, यह विचार लेवें। ऋषि व्यक्ति विशेष है। यास्क कहते हैं—**"ऋषि कुत्सो भवति कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः"** ॥ नि० १०।३२॥ यहां कर्ता कहा है, उसका अपना मत नहीं है। परन्तु औपमन्यव कोई नास्तिक तो नहीं था।

जो मैंने ठाकुर अमरसिंह जी का ध्यान दिलाया था, वहां बल इस बात पर था कि वहां 'देवापि' मनुष्य था। 'तुर्वश' शब्द मनुष्य नामों में निघण्टु में पढ़ा है। मनुष्य शब्द 'देवापि' के साथ समानाधिकरण में आया है। इसी प्रकार ऋषियों के लिये कारु च्यवन आदि शब्द आये हैं। ऋग्वेद ६।११४।२ में **"ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः"** यहां पर 'मन्त्रकृतां है, न कि मन्त्रदृशां'। यहां भूतार्थ में क्त प्रत्यय है। मेरे पास तो समाधान है, वेद आदि साहित्य है, उसमें सब प्रकार की रचना है। पोइट poet (कवि) पात्र बनाते हैं, इसी प्रकार फर्जी आख्यान बनाया गया है। जहां-जहां नदी का नाम आया है, वहां पर मन्त्रकर्ता ने=चाहे वह ऋषि था या ईश्वर, उसने नदी को पात्र बनाया है। जहां पर अपना वर्णन ऋषि करता है, वहां उसका देवता भी वही ऋषि हो गया है। पुरूरवा उर्वशी और यमयमी की तरह वह जिस मन्त्र की ओर से है, वह उसका 'ऋषि', और जिसके मुतअलिक है, वह उसका 'देवता' है।

यास्कादि ऋषियों की परिभाषा में देवता से और भी मतलब है। निरुक्त पृष्ठ ५५—**"तत्र सरस्वती इत्येतस्य नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति"**। नि० २।२३। सरस्वतीवाले मन्त्रों में नदीवत् और देवतावत् निगम होते हैं। **'अपि ह्यदेवता देवतावत् स्तूयन्ते'**। नि० ७।४। इसका अर्थ भी कर लेता। मेरा मतलब यह है कि सबजेक्ट मेटर है, Subject Matter ही देवता है, ऐसा नहीं। पं० भगवद्दत्त जी के लेक्चर में से १४।१५ पांइन्ट हैं। पहिले ऋषि का प्रकरण समाप्त कर लूं, फिर उनके विषय में कहूंगा। निरु० १०।५ में कहा है—**'ऋषिर्नाभाको बभूव'**, और ऋ० ८।३९ का नाभाक काण्व ऋषि है। अगले ४० वें सूक्त का भी वही ऋषि है।

"अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे" ॥
ऋक् ८।४०।४॥

'नभन्तामन्यके समे' यह पाठ इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र के सिवाय सब मन्त्रों के साथ में आता है। इस मन्त्र का अर्थ है—'पूजा करो नभाक के समान इन्द्राग्नी की।'

"प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे"॥ ८।४० ५॥

स्तोत्रों को पहुंचाओ इन्द्राग्नी की तरफ से नभाक के समान। 'नभाकस्यापत्यं नाभाकः' नभाक बाप का नाम है, और नाभाक पुत्र का नाम है। इसी सूक्त का बारहवां मन्त्र है—

"एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥ ऋक् ८ ४०।१२॥

स्तुति की गई है नये तौर पर इन्द्राग्नी को, अपने पिता के समान, मन्धाता के समान, अङ्गिरस के समान। इससे स्पष्ट है कि यह सब ऋषि व्यक्ति विशेष हैं। निरुक्त [१०।५] में मन्त्र दिया है—

"तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे॥
ऋक् ८।४१।२॥

यहां पर कहा है—"ऋषिर्नाभाको बभूव"। नि०१०।५। "तथा च हैरण्यस्तूपे स्तुतः। आदित्योऽपि सवितोच्यते"। नि० १०।३२। गोया सविता और आदित्य पर्य्याय हुये। आगे [नि० १०।३२], कहते हैं कि हिरण्यस्तूप ऋषि ने ऐसा कहा—"अर्चन् हिरण्यस्तूप ऋषिरिदं सूक्तं प्रोवाच। [तत्वपश्यत्]। तदभिवादिन्येषर्ग्भवति"—

हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन्।
एवा त्वार्चन् नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम्॥ [ऋ० १०।१४९।५॥]

जिस प्रकार हिरण्यस्तूप ऋषि ने तुम्हारी स्तुति की, इसी प्रकार मैं तुम्हारी स्तुति करता हुआ…। ऋग्वेद के पहिले मण्डल में कई सूक्त हैं, जो कि हिरण्यस्तूप ऋषि के हैं। जैसे १।३५।१-११ पर सवितृस्तोत्रम्, ऋषि हिरण्यस्तूप आङ्गिरस, देवता सविता लिखा है। आगे इसकी पुष्टि के लिये ऐतरेय ब्राह्मण ३।२४ में देख लो। वह व्यक्ति विशेष था, उपाधि नहीं।

पण्डित सभा की आठवीं बैठक : ता० २१-५-३१ सायंकाल

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं आप पर सवाल नहीं करूंगा। निरुक्त के शेष स्थलों पर अपने विचार प्रकट करूंगा। निरुक्त ९।२३,२४—"द्रुघणो द्रुममयो घनः। तत्रेतिहासमाचक्षते—मुद्गलो भार्म्यश्व ऋषिर्वृषभं च द्रुघणं च युक्त्वा संग्रामे व्यवहृत्य आजिं जिगाय"। मुद्गल नाम के ऋषि

भृम्यश्व के पुत्र ने द्रुघण को रथ से जोड़कर संग्राम में विजय प्राप्त की। इस वार्ता का अनुमोदन वाली ऋचा नीचे देता है। 'तदभिवादिन्येषर्भवति' [नि० ६।२३]—

'इमं तं पश्य वृषभस्य युञ्जं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्।
येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः पृतन्याज्येषु' ॥ ऋ० १०।१०२।६॥

इसका अर्थ यास्क ने इस प्रकार किया है—"इमं तं पश्य वृषभस्य सहयुजं काष्ठाया मध्ये द्रुघणं शयानम्। येन जिगाय शतवत्सहस्रं गवां मुद्गलः प्रतनाज्येषु। पृतनाज्यमिति सङ्ग्रामनाम। पृतनानामजनाद्वा, जयनाद्वा, मुद्गलो मुद्गवान् मुद्गगिलो वा। मदनं गिलतीति वा, मदं गिलो वा, मुदं गिलो वा। भार्म्यश्वो भृम्यश्वस्य पुत्रः। भृम्यश्वो भृमयोऽस्याश्वाः। अश्वभरणाद्वा"। [नि०६।२४]। 'भार्म्यश्व' भृम्यश्व का लड़का, क्योंकि वह घोड़े बहुत रखता था। बृहद्देवता ८।११-१२—

"प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः। यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः॥
आजावनेन भार्म्यश्व इन्द्रासोमौ तु मुद्गलः। अजयद्वृषभं युक्त्वा ऐन्द्रं च द्रुघणं रथे॥"

'प्रते रथं०' ऋ० १०।१०२ इस सूक्त को शाकटायन इतिहास-सूक्त मानता है। यास्क द्रुघण और इन्द्र देवतावाला, और शौनक विश्वदेव देवतावाला मानता है। इस सूक्त से मुद्गल भार्म्यश्व ने एक बैल और इन्द्र के द्रुघण को रथ में जोड़कर युद्ध में विजय प्राप्त की। यह सूक्त तो अस्पष्ट है। यह मुद्गल ऐतिहासिक है या नहीं, यह अनिश्चित है। यास्क के शब्द स्पष्ट हैं कि मुद्गल ऋषि हुआ है। पं० भगवद्दत्त जी के ब्राह्मणों के इतिहास में मौद्गल्य का इतिहास है। मुद्गल भी इसका पिता अवश्य होगा। योरोपियन स्कालर भी अभी निश्चित नहीं कर सके।

मित्रावरुण की स्तुति में अथर्ववेद ४।२९।३ देखिये—

'यावङ्गिरसमवथो यवागस्तिं मित्रावरुणा जमदग्निमत्रिम्।
यौ कश्यपमवथो यौ वसिष्ठं तौ नो मुञ्चतमंहसः" ॥

जिन्होंने अङ्गिरस की रक्षा की, जमदग्नि की जिन्होंने रक्षा की, जिन्होंने वसिष्ठ वध्र्यश्व की रक्षा की, जिन्होंने भरद्वाज विश्वामित्र की रक्षा की। पाणिनि ने विश्वामित्र कक्षीवान् प्रस्कण्व हरिश्चन्द्र इन सब की सिद्धि ऋष्यर्थ में मानी है। [यास्क के अनुसार] प्रस्कण्व की सिद्धि कण्व पुत्र अर्थ में है। मेधातिथि और गौतम आदि ऋषि कैसे हैं, इस के लिये अलग मन्त्र देखिये—

'यौ श्यावाश्वमवथो वध्र्यश्वं मित्रावरुणा पुरुमीढमत्रिम्।
यौ विमदमवथः सप्तवध्रिं तौ नो मुञ्चतमंहसः" ॥ [अथर्व ४।२९।४]

मेरी टेर को सुनो। मैं जो सप्तवध्रि हूं, उसको पाप से छुड़ाओ। मैं बार-बार पुकार रहा हूं। इसमें 'सप्तवध्रि' शब्द ऋषि के लिये आया है।

"यौ भरद्वाजमवथो यौ गविष्ठिरं विश्वामित्रं वरुण मित्र कुत्सम्।
यौ कक्षीवन्तमवथः प्रोत कण्वं तौ नो मुञ्चतमंहसः ॥
यौ मेधातिथिमवथो यौ त्रिशोकं मित्रावरुणावुशनां काव्यं यौ।
यौ गोतममवथः प्रोत मुद्गलं तौ नो मुञ्चतमंहसः" ॥ [अथर्व ४।२९।५,६]

वह ऋषि थे, इसके लिये ऋग्वेद का भी प्रमाण देता हूं। ऋग्वेद ५।७८ यह अश्वियों का सूक्त है। पहिले सूक्त का ऋषि अत्रि है। यह सूक्त उसके पुत्र सप्तवध्रि का है। इसके मन्त्र ५-६ में— **'सप्तवध्रिं च मुञ्चतम्'**, और **'ऋषये सप्तवध्रये'** पाठ आया है। अपने मुंह से ऋषि बन गया। वेद में ऋषि कारु स्तोता विप्रादि शब्द जिस तरह शायर अपनी कविता में अपना उपनाम देते हैं, उसी तरह के हैं।

अब **'तुर्वश'** क्या है ? पण्डित जी ने कहा था कि तुर्वशादि के विषय में कोई नई बात भी लाये हो, या जो मैकडानल ने लिख दिया वही है। वह बातें पहली पेश हो रही हैं। निघण्टु में मनुष्य नामों में 'तुर्वश' शब्द पड़ा है। निघण्टु की शैली ऐसी है, जैसे २२ करोड़ हिन्दुओं में मनुष्यत्व है। इसी प्रकार यहां Genesie Names भी हैं, सामान्य भी। निघण्टु पृष्ठ ११ पर 'गति' नामों में **'डीयते प्लवते जवति' यह सब गतिविशेष के नाम हैं।** निघण्टुकार ने कहा है कि यह सब गतियां हैं। पृष्ठ १५ में 'बहु' नामों में **उरु और शतम्** दिये हैं। 'उरु' विस्तारार्थ में है, 'शत' बहुत होने से बड़े अर्थ में। विशेषता होते हुये भी बहुत का अर्थ Common(कॉमन)। इसी तरह 'अल्प' शब्द। 'रूप' नामों में **अर्जुन ताम्र अरुष** पढ़े हैं। इन सब में रूप Common हैं, रंग अलग-अलग हैं। इसी तरह मनुष्यों में मनुष्यत्व Commonहै, परन्तु तुर्वश आदि अलग-अलग प्रकार के मनुष्य हैं।

ऋ० १।३६।१७ और १८ में **कण्व मेध्यातिथि बृहद्रथ और तुर्वश** शब्द आये हैं। 'पञ्चविंश-ब्राह्मण' और 'तैत्तिरीय ब्राह्मण' में इनका ऐतिहासिक सम्बन्ध मिल जायगा। ऋ० १०।४९; ४।१९।६ और १।५४।६ को देख लेवें। १।६३।११ को भी देख लेवें। १।१७४।८ और ८।१९।१४; ८।४५।२७ पर कई शब्द इकट्ठे आये हैं। इनका इतिहास किसी का कहीं और किसी का कहीं मिल जाता है। ऋ० १।१०८।८ में यह शब्द **यदु द्रुह्यु** और पुरु के साथ आया है। ८।४।१,२ पर **'अनु'** न कह कर **'आनव'** कहा है। आनव=अनु का लड़का, इसमें तद्धित डालकर और भी मुश्किल कर दिया है। इसके साथ **'तुर्वश'** का सम्बन्ध भी मिल जाता है।

अथर्ववेद कुन्ताप सूक्त २०।१२७।१ में—

"इदं जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते।
षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे ॥"

इसमें नरों की कथा **'कौरम'** की दान-स्तुति आयी है। यास्क भी **'नराशंस'** का अर्थ—**"येन नराः प्रशंसन्ते स नराशंसो मन्त्रः"** [नि० ९।९]। अभी आपकी **'अथर्व संहिता'** का भी निश्चय नहीं हुआ। कालेज रिसर्च डिपार्टमेन्ट की तरफ से १८ काण्डयुक्त अथर्ववेद सिद्ध किया गया है। ऋग्वेद की एक शाखा से कुन्ताप सूक्तों का सम्बन्ध दिखाया गया है। पिछले काण्ड न भी हों, तो भी यह तो हैं ही। **'आनव'** के साथ **'यादव'** भी आता है। ऋ० ४।३०।१७ में **'उत त्या तुर्वशा यदु'** पाठ आया है। यहां पर क्या अर्थ करेंगे, यदि In genesie करें। यदि **तुर्वश** का अर्थ मनुष्य है, **यदु** का भी मनुष्य हो, तो उससे कुछ भी अर्थ नहीं निकलेगा। शतपथ १३।५।४।१६ में **'तौर्वश उदीरत'**, उसके साथ पांचाल सत्राषाट् राजा का वर्णन भी आया है। **कुरुङ्ग तुर्वश** और **पांचाल** का परस्पर सम्बन्ध भी प्रतीत होता है। इसीलिये पं० राजाराम जी ने **तुर्वश** शब्द का निश्चित अर्थ न करके **तुर्वश**

ही लिख दिया था। मैं चाहता तो यह था कि मेरे दोस्त की सब Theories की आलोचना करता।

[श्री पं० भगवद्दत्त जी बीच में—पं० राजाराम जी ने लिखा है कि निघण्टु कश्यप प्रजापति ने बनाया है, जो कि अत्यन्त प्राचीन है। जब कि यदु आदि जातियां थीं ही नहीं। और यह भी कह देवें कि यह मन्त्र यदु के बाद बना।]

श्री पं० विश्वबन्धु जी—इसका उत्तर पं० राजाराम जी दें, मैं नहीं देता। महाभारत के प्रमाण में तुर्वसु पाठ है। **ययाति** ने सारा वेद पढ़ा, यदि वेद पहिले मौजूद न था, तो पढ़ा कैसे ? कृत्स्न वेद का तो भगवद्दत्त जी को पता ही नहीं। अभी तक खिल छाप रहे हैं। कृत्स्न शब्द बड़ा Dangerous है। जब यदु आदि पैदा नहीं हुये थे, तो वेद में कैसे ? ऋग्वेद में **ययाति** का जिक्र आता है। ऋ० १।३१।१७ में—**'ययातिवत्सदने पूर्ववच्छुचे'** यहां वत् का अर्थ समान है। **'तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः'** [अ० ५।१।११४]-ययाति के समान। **ययाति** बहुत जाता होगा, उसके तुल्य ऐसा यौगिक प्रक्रिया से कुछ अर्थ नहीं हो सकता। ऋ० १।४५।३ में **अङ्गिरस्वत्** इत्यादि शब्द आये हैं। निरुक्त में स्वयं कहा है—**'अङ्गिरसः ऋषयः'**। अब आप स्वयं विचार लें कि महाभारत को मानेंगे या वेद को ? दोनों में विरोध होने पर वेद माना है। इसका उत्तर सोच लेना।

वेदभाषा के सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त जी ने viluntion theory को कहा है। यह आर्यसमाज के सिद्धान्त के विरुद्ध है। स्वामी जी की थ्यूरी चार ऋषियों की है। पं० भगवद्दत्त जी वेदों को ईश्वरीय नहीं मानते। [श्री पं० भगवद्दत्त जी बीच में—"मानता हूं"] पं० भगवद्दत्त जी लौकिक भाषा अलग-अलग मानते हैं। और प्रवचन की भाषा अलग-अलग मानते हैं। क्योंकि **काठक संहिता, मैत्रायणी संहिता** आदि में लौकिक भाषा में पाठ मौजूद हैं। **"अनृतं हि गाथानृतं नाराशंसीः"** काठ-सं० १४।५। **'अनृतं मनुष्याः'** श० १।१।१।४। पंडित जी ने अनृतं का अर्थ मनुष्य किया है, मानव कल्पना गाथा है। 'ब्राह्मण मनुष्यों की कृति होने से वेद नहीं हो सकते'। यह आपकी थ्यूरी है, परन्तु वह गाथा वेद में भी है, इससे वेद भी झूठा सिद्ध होगा, मैं प्रमाण दूंगा। आपने बात उठाई तो सही, किन्तु आपसे यह प्रश्न हल नहीं हुआ। इसलिये आपने कल्पना चलाने का यत्न किया कि ब्राह्मण और वेद की गाथायें अलग-अलग हैं।

श्री पं० भगवद्दत्त जी—फिर मुझे समय दीजिये।

श्री प्रधान जी—उनको बोलने दें।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—आपका रूलिङ्ग था कि मेरी स्पीच अन्त में होगी।

श्री प्रधान जी—यह नहीं। मैंने यही कहा था और आपने भी डिमाण्ड किया था कि आपके बाद पं० भगवद्दत्त जी न बोलेंगे। मैंने यह नहीं कहा कि आपके बाद कोई भी न बोलें। मैं यदि ६।। के बाद Extand नहीं करूंगा, तो पं० भगवद्दत्त जी को समय नहीं दूंगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मेरी स्पीच लास्ट हो, तब मैं बोलूंगा, नहीं तो नहीं।

महात्मा जी—यदि कान्फ्रेंस ६॥ के बाद रात को १०, ११ बजे तक रहे, तब आपको मौका दिया जायगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—मैं आप सबके व्याख्यान सुनने के लिये तैयार हूं, परन्तु पण्डित लोगों के नहीं। आपने यह कहा था कि किसी को समय नहीं मिलेगा। आप यह कहें कि आपका रूलिङ्ग स्टेण्ड करता है ? मैं तब बोलूंगा [यह कह कर पं० विश्वबन्धु जी बैठ गये]।

श्री प्रधान जी—मैंने यह रूलिङ्ग नहीं दिया था कि आपके बाद किसी को बोलने नहीं दिया जायगा, या आपकी स्पीच अन्तिम होगी। आपने यही कहा था कि पं० भगवद्दत्त जी को आपके बाद बोलने का समय न दिया जावे। यदि कान्फ्रेंस को आज साढ़े छः बजे समाप्त कर दिया जायगा, तब उनको समय नहीं दिया जायगा।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—किसी को प्रतिनिधि रूप में भी समय न दिया जाय। आपका यह Ruling था कि जो-जो एक दल के बोल चुके हैं, उनको दुबारा समय नहीं दिया जायेगा।

श्री प्रधान जी—बहुत अच्छा, प्रतिनिधि रूप में भी उनको समय नहीं दिया जायगा। और जो एक दल के बोल चुके हैं, उन्हें भी समय नहीं दिया जायगा। परन्तु यदि हम फैसला करें कि यह कान्फ्रेंस रात के १० बजे तक जारी रहेगी, या कल दुपहर तक जारी रहेगी, तो उस अवस्था में उनको भी समय दिया जायेगा, आपको भी समय दिया जायेगा, औरों को भी दिया जायगा।

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—आरम्भ में आपने अपनी कोई स्थिति नहीं रखी, न आप वादी बन कर ही हमारे सामने आये, और न शंका के रूप से। अब अन्त में आकर सारे प्रश्न आपने रख दिये हैं। इण्डेक्स का बोझ लाद दिया। अब न्यायोचित यही है कि आप अपने प्रश्नों का उत्तर भी सुनलें। हमें आग्रह नहीं, किन्तु समय न मिलने पर जवाब किस तरह दिया जा सकता है ?

श्री पं० राजाराम जी—पं० चारुदेव जी इसी विश्वास से नाराज होकर चले गये हैं कि अब उन्हें समय नहीं मिलना।

श्री पं० विश्वबन्धु जी—इन्होंने लौकिक भाषा का उदाहरण दिया है—

"तद्वै स प्राणोऽभवत् महाभूत्वा प्रजापतिः। भुजो भुजिष्या विश्वैतद् यत्प्राणान् प्राणयत् पुरि"॥
श० ७।५।१।२१॥

"अन्तरं मृत्योरमृतं मृत्यावमृतमाहितम्। मृत्युर्विवस्वन्तं वस्ते मृत्योरात्मा विवस्वति"॥
श० १०।५।२।४॥

परन्तु इससे भी आसान मन्त्र वेद में पाये जाते हैं—

"यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः॥ यजु० ४०।७॥

यत्स्वप्ने अन्नमश्नामि न प्रातरधिगम्यते ।
सर्वं तु तदस्तु मे शिवं नहि त दृश्यते दिवा" ॥ अथर्व० ७। १०१।१॥
इससे वेद भी मानवीय सिद्ध हो गये ।
"त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः" ॥ अथर्व० १०।८।२७॥
"बालादेकमणीयस्कमुतैकं नैव दृश्यते ।
ततः परिष्वजीयसी देवता सा मम प्रिया" ॥ अथर्व० १०।८।२५॥

मूल वेद में इतने आसान मन्त्र मौजूद हैं। यह भाषा लौकिक भाषा के साथ मिलती-जुलती है। इनका गाथा नाम है, गाथा ऋचाओं को भी कहते हैं। गाथा वेदों में भी मौजूद हैं, ऐसा श्रौत और ब्राह्मण के प्रमाण से सिद्ध है। आपकी पुस्तकों में आपने इन्द्र गाथा आदि को माना है। गाथा लौकिक के आधार पर है, यह वाद कहीं नहीं पाया जाता। गाथा और नाराशंसी अनृत हैं, तो वेद में क्यों हैं ? आप अपनी पुस्तक के १ पृ० पर कहते हैं—'ब्राह्मणों का प्रवचन मन्त्रों के प्रकाश के पीछे हुआ। इसलिये इनका नाम वेद में नहीं होना चाहिये'। वेद में गाथा नाराशंसी का वर्णन आया है—

"रैभ्यासीदनुदेयो नाराशंसो न्योचनी । सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम्" ॥
ऋ० १०।८५।६॥

"इतिहासस्य च वै स पुराणस्य च गाथानां च नाराशंसीनां च प्रियं धाम भवति य एवं वेद" ॥
अथर्व० १५।६।१२॥

कुन्ताप सूक्त में इन्द्रगाथा आती है। गाथा और नाराशंसो वेद में बड़े आदर से आया है।
"कर्मांणि याभिः कथितानि राज्ञां दानानि चोच्चावचमध्यमानि ।
नाराशंसीरित्यृचस्ताः प्रतीयाद् याभिः स्तुतिर्दाशतयीषु राज्ञाम्" ॥ बृहद्देवता ३।१५४॥

राजाओं की जिससे स्तुति होती है, उन ऋचाओं को 'नाराशंसी' कहते हैं, ऐसा शौनक महर्षि प्रणीत पुस्तक में लिखा है। पं० भगवद्दत्त जी उन्हें झूठा कहते हैं। शौनक ऋषि उनको ऋचा कहता है। कितनी ही दान-स्तुतियां आई हैं, झूठा शास्त्र वेद में कैसे आया ? मैं चैलेंज करता हूं कि इस प्रमाण का अर्थ गलत किया गया है। दो तरह की ऋचाओं देवता तथा मनुष्यों के भेद में मनुष्यों की हीनता दिखाने के लिये आया है। 'अनृत' का अर्थ मानवीय नहीं हो सकता। काठक संहिता और मैत्रायणी का भाव यह नहीं है कि नाराशंसी आदि झूठी हैं। आप ऋषियों का अपमान करते हैं। आप कहते हैं कि मनु बड़ा प्राचीन है। मनु से नाराशंसियों का प्रमाण दिखाऊंगा—

"मनोर्ऋचस्सामधेनीषु अप्यनुब्रूयात् मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तद् भेषजमासीत्"
काठक सहिता ११।५॥

"मनोर्ऋचो भवन्ति मनुर्वै यत्किञ्चावदत्तद् भेषजमेवावदत्" ॥ मैत्रायणी २।५॥

यहां मनु की बनाई ऋचाओं का वर्णन है। ऋग्वेद के ऋषियों में मनु का जिक्र है। मैत्रायणी में—'**मनोर्ऋचो भवन्ति**' ऐसा लिखा है, और यहां 'अवदत्' कहा है। 'वद' का अर्थ '**व्यक्तायां वाचि**' अर्थात् स्पष्ट कहना है, देखना नहीं। प्रातः 'प्रोवाच' बताया गया था। मैं प्रोक्त और दृष्ट में भेद नहीं मानता हूं। काठकादि संहिताओं के विषय में पं० भगवद्दत्त जी ने लिखा है कि इनकी अनुपूर्वी के अनित्य होने से ये संहितायें प्रोक्त हैं, और मूल वेद से नीचे हैं। **मैंने वेद के निर्णायक शास्त्र बृहद्देवता** से दिखाया कि राजाओं के दान-स्तोत्रों का नाम नाराशंसी है। देवताओं के मुकाबले में मनुष्य गौण है, इसलिये वहां अनृत का प्रयोग आया है। अतः वहां अनृत का अर्थ झूठा नहीं हो सकता। पं० भगवद्दत्त जी ने ब्राह्मण वेद नहीं हैं, इसके लिये जो प्रमाण दिये हैं, वह भी ठीक नहीं हैं।

"भरद्वाजः क्षुधार्त्तस्तु सपुत्रो विजने वने।
बह्वीर्गाः प्रतिजग्राह वृधोस्तक्ष्णः महातपः" ॥ मनु० १०।१०७॥

इसमें 'वृधु' नामक तरखाण की दान-स्तुति है। इसी प्रकार शांख्यायन और श्रौत में भी यही कथा है। अनुक्रमणी में भी यही है। बृहद्देवता में भी "**अयं य अननवद् वृधस्तुतिः**"। ऋग्वेद ६।४५।३१-३५ तक का 'वृधु तक्षा' देवता है। कारु ऋषि लोग उसकी स्तुति करते हैं। अगर लौकिक भाषा वेद से पहिले चली जाय, तो वेद उससे पीछे चले जायेंगे। गाथा और नाराशंसी का भी मैंने उत्तर दे दिया है। पं० भगवद्दत्त जी के ग्रन्थ पृ० १ पर ब्राह्मण शब्द वेद में नहीं है। तब गाथा आदि का नाम क्यों उसमें आया? पण्डित भगवद्दत्त जी के ग्रन्थ साहब में पृ० ६८ पर लिखा है—"इस पर हमारा कथन है कि जो गाथायें हमने प्रमाणार्थ उद्धृत की हैं, वह सब पौरुषेय हैं"। मैंने उनको वेद से सिद्ध कर दिया। मनु बृहद्देवताकार आदि सब ऋषियों की साक्षी भी दे दी।

मैं वैदिक हूं, दयानन्दी नहीं हूं। मैं दयानन्द को इस युग का आचार्य मानता हूं। बुलनर को अपना गुरु मानता हूं। बुलनर से मैंने पढ़ा है। उसने सदा मेरी सहायता की है। कोष के काम के लिये उसने कितना ही मसाला मेरे सुपुर्द कर दिया। ब्राह्म महाविद्यालय को वाचस्पति परोक्षोत्तीर्ण को शास्त्री परीक्षा में बैठने के लिये स्वीकार कराने में बहुत सहायता की है। इतना होने पर यदि बुलनर को गुरु कह दिया तो कौनसा बुरा किया? बुलनर को गुरु कहने से दयानन्द को गुरु नहीं मानना, यह बात नहीं। मैंने 'वेद-सन्देशों' को महर्षि दयानन्द की पुण्य स्मृति में समर्पण किया है। 'देवयज्ञ-प्रदीपिका' पं० लखपतराय की स्मृति में समर्पण की है। 'आर्योदय' महात्मा हंसराज जी को समर्पित की है।

पं० भगवद्दत्त जी ने शेष शाखाओं के विषय में १२५ पृष्ठ पर लिखा है—"शेष शाखायें कृत तो नहीं, किन्तु आनुपूर्वी अनित्य होने से प्रोक्त हैं।" इसके लिये कोई प्रमाण नहीं दिया। कुन्ताप सूक्तों को "अथर्वसंहितान्तर्गत नहीं हैं" [ऐसा लिखा]। यह सूक्त अथर्ववेद में छपे हुये हैं, परन्तु आपका यह दावा है कि ये सूक्त अथर्व संहिता में नहीं हैं। आगे आप लिखते हैं कि—"कि इन पर पदपाठ भी नहीं है"। पृष्ठ ११ पर लिखा है—"इस शतपथ में वेदार्थ की कुञ्जी है, वैदिक विषयों का भरपूर ज्ञान है, वैदिक ऐतिह्य का प्रामाणिक कथन है। महाभारत के पूर्वोक्त प्रमाण में याज्ञवल्क्य का गर्व अनुचित नहीं।

उसका बनाया हुआ ब्राह्मण वस्तुतः अपूर्व है । "श० ११।५।१।१० में कहा है कि पुरूरवा और उर्वशी के आलङ्कारिक संवाद का यह सूक्त पन्द्रह ऋचाओं का है, ऐसा ऋग्वेदीय कहते हैं। परन्तु ऋग्वेद १०।९५ में, जिसके कुछ मन्त्र यहां उद्धृत हैं, १८ ऋचा हैं। शतपथ का संकेत किस शाखा की ओर है, यह ज्ञात नहीं" । यह ऋग्वेद पर कटाक्ष है, अब १५ ऋचा हैं। शतपथ के अनुसार वर्तमान ऋग्वेद अप्रमाणित सिद्ध हो गया ।

"ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्" [ऋ० १०।९०।१२] इस मन्त्र में 'उरु तदस्य यद्वैश्यः' के स्थान पर अथर्ववेद में 'मध्यं तदस्य यद्वैश्यः' [अथ० १९।६।६]। अथर्ववेद तो व्याख्या नहीं। 'अश्मन्वती रीयते सं रभध्वमुत्तिष्ठत प्रतरता सखायः । अत्रा जहीमोऽशिवा ये असञ्छिवान् वयमुत्तरेमाभि वाजान्" [यजु० ३५।१०] यजुर्वेद के इस मन्त्र के उत्तरार्ध की जगह ऋग्वेद में "अत्रा जहाम येऽसन्नशेवाः शिवान् वयमुत्तरेमाभिवाजान्"। ऋ० १०।५३।८ पाठ है। आपने जो दलील दी थी कि—"आनुपूर्वी के अनित्य होने से शाखायें प्रोक्त हैं", आपके मूलवेदों में भी इसी तरह के पाठभेद हैं, पाठ निश्चित नहीं है। आप इस तरह चार मूल संहिताओं को भी नहीं बचा सकते।

कात्यायन ने ऋग्वेद के ८।२४ के २८ से ३० तक तृच को 'सौत्राम्णोऽस्यवरोर्दानस्तुतिः' कहा है। बृहद्देवता में इसका देवता 'उषा' कहा है, तो क्या हुआ ? तो क्या इससे यह सिद्ध हो गया कि वेद में दान-स्तुतियां नहीं हैं ? अगर एक तृच के सम्बन्ध में भेद हो गया, तो क्या हुआ ? बाकी दानस्तुतियों का क्या होगा ?

'प्रेतीतिहाससूक्तं तु मन्यते शाकटायनः ।
यास्को द्रौघणमैन्द्रं वा वैश्वदेवं तु शौनकः' ॥ बृह० ८।११॥

जब वेद पर विचार होता था, तब सब अपनी-अपनी राय देते थे। तब उन्होंने अपनी-अपनी पृथक्-पृथक् राय भी दे दी हो, तो क्या है ? स्कन्द और दुर्ग कुछ कहें, उनकी ऋषियों के मुकाबले क्या कदर है ? प्रातः बता दिया गया कि भूतार्थवाद और फर्जी भी अर्थवाद होता है। कहा है—

"आम्नायस्य क्रियार्थत्वादानर्थक्यमतदर्थानाम् ।
विधिना तु एकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः" ॥

अर्थवाद झूठा तो नहीं हो सकता। मीमांसकों के मत में वेद क्रियार्थक है। अवयवावयवी भी अनर्थक नहीं। दोनों को मिला कर पढ़ो। विधि के साथ एकवाक्यता हो जाने से विधियां स्तुति के लिये होती हैं। जैसे कोई कहे कि डी० ए० वी० कालेज को एक-एक ईंट में त्यागी पुरुषों का इतिहास भरा हुआ है। यह अर्थवाद होता है। उषा का वर्णन करने के लिये तथा आदित्य के वर्णन के लिये कथायें घड़ी हैं। यास्क ने असली और फर्जी इतिहास में विवेक नहीं किया है।

निरुक्तकार कहता है—"ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता" [नि० १०।१०]। इस पर दुर्ग लिखता है—"अनुभूतेन्द्रमैत्रस्येन्द्रवयस्यस्य गृत्समदस्येन्द्रं प्रति प्रीतिः तुष्टिः भवत्याख्यानसम्बद्धा" [पृष्ठ ८३४]। इस सूक्त [ऋ० २।१२] का गृत्समद ऋषि है। इसी के सम्बन्ध में आगे लिखता है—"अतश्च दर्शयति मन्त्राणामैतिहासिकोऽप्यर्थ उपेक्षितव्योऽसावपि तेषां विषयः" इति।

दुर्ग न भी माने, स्कन्द न भी माने, परन्तु प्राचीन ऋषियों की मोहर जो लग गई, उसे कौन टाल सकता है। पं० भगवद्दत्त ने मेरी]Progressive interprettaton को Theory के विषय में कहा था। सो अभी तो वेदों के विषय में ही निश्चय नहीं; उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों के विषय में भी अभी निश्चय नहीं हुआ कि वे कब के बने हैं ? उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थ मानवीय हैं। वे सारे के सारे एक समय में नहीं हो सकते। आप मानते हैं कि सारे ऋषि महाभारत काल के आस-पास में हुये हैं। पांच सौ साल के अन्दर सब के मुंह से एक ही बात स्वप्न की तरह निकली, यह Unnatural है।

... जैसे पीछे अद्वैत विशिष्टाद्वैत द्वैतवाद भिन्न-भिन्न रहे, इसी प्रकार पहले **ऋषियों में मतभेद रहना स्वाभाविक है**। जो अपने अनुकूल होते हैं वह मुख्य, और शेष गौण हो जाते हैं। **शङ्कर ने 'अद्वैतवाद'** का सिद्धान्त बना कर श्वेताश्वतर को भी घसीटा, और मुख्य और गौण का भेद भी अपने सिद्धान्त के अनुसार किया। जिस श्रुति से अद्वैतवाद की तनिक भी झलक आयगी वह मुख्य, अन्य सब गौण हैं। दूसरे आचार्यों ने 'विशिष्टाद्वैत' को मुख्य मान कर बाकियों को गौण कर दिया। माध्वाचार्य भी इसी तरह से हुये। सब के सब स्वतन्त्रतया सिद्धान्त बना कर शास्त्रों में उछेलते हैं, और अपने मत के अनुसार श्रुतियों को इकट्ठा करके मूल बनाते हैं। यह मेरा मतलब Progressive interPrettation से था। यह मुझ को Unhistoric और Unseintific प्रतीत होता है। [**श्री प्रधान जी**—बीच में—ऋषि दयानन्द भी इसी श्रेणी में हैं, या नहीं ?]। [श्री विश्वबन्धु जी] यह बात प्रकरण में नहीं है। भिन्न-भिन्न समयों पर विचारों में भेद होता है। समन्वय का तरीका ठीक प्रतीत नहीं होता। यह एक असम्भव घटना प्रतीत होती है, मैं इस पर अड़ता नहीं।

ऋषियों के सम्बन्ध में मैं अपने विचार बतला चुका। वसिष्ठ विश्वामित्र आदि को व्यक्ति मानना पड़ेगा, क्योंकि वह कर्त्ता नहीं तो द्रष्टा तो थे ही। प्राणों की महिमा बढ़ाने के लिये वसिष्ठादि शब्द आये हैं, किन्तु समाज तो इन्हें व्यक्तिविशेष भी मानता है। मेरा वाद तो यह है कि—**केवल यौगिक अर्थ हमें एक निश्चय पर नहीं पहुंचाता**। यदि अर्थ निश्चित न हो, तो निघण्टु ही कुछ नहीं रहता। मैं तो **ऋग्वेद ऋग्वेद से खुलेगा यह माननेवाला** हूं। मैं तो केवल Entynology के विरुद्ध हूं। जहां-जहां शब्द आया हो, वह प्रतीकें प्रकरण के अनुसार लिखो, और उनको कई बार पढ़ो, फिर एक झलक पड़ेगी। इस प्रकरण में यह शब्द ऐसे आया है, और इस प्रकरण में ऐसे आया है। उस तरह से Comparision करके निघण्टु निरुक्त ब्राह्मण ग्रन्थों से सहायता ले लो। यदि एक शब्द एक ही जगह पर आया हो, तो उसका क्या बनेगा ? मेरा विचार है कि जहां वेद नहीं खुल सकता, वहां व्युत्पत्ति का आश्रय कीजिये। संज्ञावाचक शब्द रूढ़ हो चुका है, जैसे अंगुली। जहां अनिश्चित अर्थ हो, जैसे शिरिम्बिठ मेघ और ऋषि का वाचक दर्शाया है, वहां यौगिक प्रक्रिया अर्थ करने में सहायक है, किन्तु प्रकरण देखना आवश्यक है। महज Entynoloist किसी तरह नहीं हो सकता।

श्री प्रधान जी—कल प्रातः ७ से ११ बजे तक सभा होगी।

पण्डित-सभा की नवमी बैठक : ता० २२-४-१६३१ प्रातःकाल

श्री पं० प्रियरत्न जी—जो ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज का नियम वेदों के पढ़ने के सम्बन्ध में बनाया है, मेरे ऊपर उसके अनुसार वेद पढ़ने का असर पड़ा। पं० विश्वबन्धु जी भी इस नियम का पालन करते हैं। दयानन्द के सामने भी अनुक्रमणी और ब्राह्मणादि ग्रन्थ थे। उनके होते हुये वेदों को उन्होंने सब विद्याओं का भण्डार और स्वतःप्रमाण माना। दूसरे ग्रन्थ परतःप्रमाण हैं। वेद को उनके पीछे मत लगाओ, वे तो वेदानुकूल होने से प्रमाण हैं।

सबसे प्रथम पं० विश्वबन्धु जी ने ऋषि-वाद का खण्डन किया था। उन्होंने कहा था कि **ऋषि मन्त्रकर्त्ता हैं**। ऋषि दयानन्द का मत है कि वह **मन्त्रार्थ-द्रष्टा हैं**। उन्होंने कहा कि उपाधिवाद प्रियरत्न का है। मैं दूसरे और तीसरे में कोई भेद नहीं समझता। जिसने दर्शन किया वह 'विश्वामित्र' था। जो अब भी दर्शन करे, और आगे भी करे, वह 'विश्वामित्र' हो सकता है। उपाधिवाद के खण्डन में उन्होंने कहा था कि ऐतरेय आरण्यक में जो वचन है, वह प्राण की महिमा है। वहां आत्मा का प्रकरण नहीं, यह कहा गया था। परन्तु अध्ययन से पता चलता है कि वहां आत्मा का नाम प्राण है, अन्य संवाद नहीं।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के साथ सम्बन्ध रखनेवाले जो विश्वामित्रादि हैं, उनके सम्बन्ध में सायण प्रारम्भ में लिखता है कि विश्वामित्रादि नाम हैं; प्राण की महिमा नहीं कहीं गई। मन्त्र का प्रमाण सायण ने दिया है—

'अपाङ प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यो मर्त्येना सयोनिः।
ता शश्वन्ता विषूचीना वियन्ता न्यन्यं चिक्युर्न नि चिक्युरन्यम्' ॥ [ऋ० १।१६४।३८]

"एतेन प्राणेन सहेदं सर्वं शरीरजातं समानस्थानकमित्येतत्प्रसिद्धम्। शरीराणि मर्त्यानीत्येतदत्यन्तं प्रसिद्धमिति द्योतयितुं हि शब्दः प्लुतिश्च, प्राण-देवता त्वमृता ॥[ऐ० आ० १।८]

इसी मन्त्र को पं० विश्वबन्धु जी ने 'वेद-सन्देश' में देकर 'अमर्त्य' का अर्थ आत्मा किया है। मन्त्र के साथ सम्बन्ध रखनेवाली उपाधि उस ऋषि को अवश्य मिलेगी, जो उसके अर्थों का दर्शन करेगा। इसीलिये यह सब आत्मा की उपाधियां हैं।

'यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दोदैवतब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वाध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्त्तं वा पद्यति प्रवा मीयते पापीयान् भवति। यातयामान्यस्य छन्दांसि भवन्ति ॥ [**आर्षेय ब्रा०** १।१।६]

वेद को जानने के लिये छन्द देवता तथा ऋषि को ध्यान में रख कर पढ़ना चाहिये। यहां पर भी यही भाव है। उपाधि को ध्यान में रखना चाहिये।

वह ऋषि मन्त्रों को बनानेवाले हैं, इसके सम्बन्ध में आपने कहा—**'कर्त्ता स्तोमानाम्'**। **ऋषेर्मन्त्रकृतां स्तोमैः'**। यह विचार उनके 'कृञ्' धातु के अर्थों के भ्रम से हुआ है। कृञ् धातु का महाभाष्य में बहुत विवेचन है। **'भोजनं कुरु'** में कृञ् धातु बनाने के अर्थ में नहीं है। इसी

प्रकार 'मानव गृह्यसूत्र' में विवाह-प्रकरण में—**'पश्चादग्नेश्चत्वार्यासनानि कल्पयीत,···दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकार०'** [मानव गृह्य १।८।१,२]। यहां 'कृञ्' धातु का अर्थ बनानेवाला नहीं, पढ़ना अर्थ स्पष्ट है। इसी प्रकार **'कर्त्ता स्तोमानाम्'** में स्तोमों के पढ़नेवाला अर्थ है।

अनुक्रमणी में **'यस्य वाक्यं स ऋषिः'** ऐसा लिखा है। यहां बनाने के रूप में अर्थ नहीं लेना चाहिये, किन्तु यहां आधिपत्य में वाक्य है। जैसे **'बुद्धदेवस्य पुस्तकं, न कर्तृरूपेण आधिपत्यरूपेण'**। **'इदं पुष्पं भवान् पश्यतु'** इस वाक्य का ऋषि प्रियरत्न, देवता पुष्प। इस वाक्य का बनानेवाला मैं हूं। किसी एक शब्द का बनानेवाला मैं नहीं हूं।

'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्॥ [गीता ८।१३]

इसमें 'ओ३म्' मन्त्र माना है। तै० आ० १०।२३ में 'ब्रह्मार्षम्' आया है, 'ब्रह्म' ऋषि है। 'ओ३म्' के विषय में कोई नहीं मानता कि इसे मनुष्य ने बनाया है। 'ब्रह्म' भी किसी व्यक्तिविशेष का नाम नहीं। 'मुण्डक' में कहा है—**'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति'** [मुण्ड० ६]। अर्थात् ब्रह्म उपाधि को धारण करता है।

'हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम'॥ [ऋ० १०।१२१।१]

इसका अर्थ कर्त्तृवाद पक्ष में क्या होगा? यदि कर्त्ता न मानें, तब 'हिरण्यगर्भ' द्रष्टा की उपाधि होती है। आपके पक्ष के अनुसार सर्प और नदियां ऋषि हैं। यहां उपाधि ही मानना पड़ेगा। आप भी आरोप मानते है, आपने कहा था कि ऋग्वेद में 'देवापि' के साथ मनुष्य विशेष पड़ा हुआ है। वहां 'शन्तनु' का विशेषण क्यों नहीं, केवल देवापि ही का क्यों है? स्कन्द ने 'देवापि' का अर्थ 'विद्युत्' स्पष्ट किया है।

'कुरुङ्ग' अभी निर्णीत नहीं हुआ, आप 'नाभाक' पर आ गये। 'नाभाक' जलयुक्त अन्तरिक्ष का नाम है—

"तमू षु समना गिरः पितॄणां च मन्मभिः।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्त स्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे"॥

"तं स्वभिष्टौमि समानया गिरा गीत्या स्तुत्या पितॄणां च मननीयैः स्तोमैर्नाभाकस्य प्रशस्तिभिः"॥ [निरु० १०।५]

यहां जलयुक्त अन्तरिक्ष की 'प्रशस्ति' अर्थ है। 'पितृ' शब्द ऋतुओं का वाचक है। **'ऋतवो वै पितरः'** [श० २।६।१।३२]। ऋतुओं की विवेचना करते हुये वृष्टि का प्रकरण है।

श्री पं चारुदेव जी—यास्कीय मतम्—मेरा विश्वास है कि निरुक्त के सम्यक् पाठ से यह निश्चय होता है कि उसका निर्वचन का क्या सिद्धान्त है। **'अर्थाधारा व्युत्पत्तिः, व्युत्पत्त्याधारो वा अर्थः', 'अर्थनित्यः परीक्षेत'**। व्युत्पत्ति अर्थ के आश्रित है। वह बता रहा है कि 'गो' शब्द का अर्थ पृथिवी क्यों है? Entymology अर्थों को Lead नहीं करती। निरुक्तकार कभी-कभी निरुक्ति नहीं

भी करता, और अर्थ कर देता है। अर्थात् अर्थ मुख्य है, व्युत्पत्ति गौण है। प्रकरण के अनुसार सैकड़ों अर्थ हो सकते हैं।

यास्क का सिद्धान्त है कि **अग्नि-मित्रादि नाम परमात्मा के** नहीं हैं। यह द्वादशाध्यायी निरुक्त में कहां नहीं है। इसमें देवता चेतन माने गये हैं—**"अपि वा पुरुषविधानामेव सतां कर्मात्मान एते स्युः। यथा यज्ञो यजमानस्य, एष चाख्यानसमयः"** [निरु० ७।७] इसका खण्डन नहीं किया। यास्क कहता है कि इन्द्र बिजली उसका कर्मात्मा है। **निरुक्त के अन्दर हमारे मत का पोषण नहीं** है। निरुक्त १३ वें अध्याय की पहली पंक्ति से स्पष्ट है कि यह यास्क की कृति नहीं है– **"अथेमा अतिस्तुतय इत्याचक्षते। अपि वा सम्प्रत्यय एव स्यान्माहाभाग्याद्देवतायाः। सोऽग्निमेव प्रथमामह"** [निरु० १३।१]। अर्थात् आचार्य यास्क ने अग्नि को पहले कहा। इससे स्पष्ट है कि इस अध्याय का कर्त्ता कोई अन्य है। दशम अध्याय में यास्क ने कहा – **'वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरङ्कृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्'** ॥ [नि० १०।२]। हे दर्शनीय वायो!, यहां पर मध्यमस्थानी देवता माना है— **'कमन्यं मध्यमादेवमवक्ष्यत्'**। वरुण भी मध्यमस्थानी देवता माना गया है—**'वरुणो वृणोतीति सतः स मध्यमः'** [नि० १०।३]। निघण्टु में 'वरुण' का पाठ किया है। 'त्वष्टा' सूर्य उसका पुत्र मेघ है। यास्क 'त्वष्टा' को भी माध्यमिक देवता मानता है। **'अग्निरिति शाकपूणिः'** [निरु० ८।१४]

यास्क की प्रतिज्ञा थी कि—**'समाम्नायः समाम्नातः स व्याख्यातव्यः'**। [नि० १।१]। द्वादशाध्यायी में व्याख्या समाप्त हो गई। अब तेरहवें-चौदहवें की क्या आवश्यकता थी? इन अध्यायों में शैली का भेद पाया जाता है। वहां नवीन वेदान्त है, जिसका कि आर्यसमाज खण्डन करता है। चौदहवें अध्याय के अन्त में यास्क लिखता है कि—**'ब्रह्मणः सार्ष्टि सरूपतां सलोकतां गमयति य एवं वेद'**। [नि० १३।४८], **यां कां च देवतां**। सारी द्वादशाध्यायी में हवियां दी हैं।

"य ईं चकार न सोऽस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्।
स मातुर्योना परिवीतो अन्तर्बहुप्रजा निर्ऋतिमाविवेश" ॥ [नि० २।८]

वह मध्यस्थानी इन्द्र ही जानता है, वह इन्द्र कौन है? **'ऋषे र्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता"** [नि० १०।१०] यहां पर आख्यान जोड़नेवाला ऋषि कौन है, और द्रष्टा कौन है? यहां पर भिन्न-कर्तृत्व है। किसी ने कह दिया माया है, वास्तव में युद्ध नहीं। किसी ने कुछ अर्थ किया, और किसी ने कुछ। कहते है **'कुरुङ्गो नाम राजा बभूव'** पाठ नहीं है। यह पाठ दुर्ग ने छोड़े हैं। यह प्रायोवाद है कि उसने सारे Text को reproduce किया है। दुर्ग में पाठ है—**'निषद्य-निषद्य हन्तीति [प्राणिवधजीवनः]। अथवा निषण्णम् अस्मिन् पापकमिति नैरुक्ताः"** [नि० दुर्गटीका पृष्ठ २२३] यहां पर दुर्ग ने निरुक्त [३।८] का पाठ नहीं दिया। मैंने दिखा दिया कि व्युत्पत्ति गौण है, और अर्थ मुख्य है।

श्री पं० बुद्धदेव जी मीरपुरी – यह कहा गया है कि यास्क मध्यस्थानी आदि (चेतन) देवता मानता है, किन्तु 'विश्वकर्मा' शब्द का अर्थ करते हुये जीवात्मा तथा सूर्यपरक अर्थ करता है। द्युस्थानी देवताओं में आत्मा कहां से आया? यह अर्थ करके कहा है कि **'तत्रेतिहासमाचक्षते'** [नि० १०।२६] इससे स्पष्ट है कि यास्क ने तीनों प्रकार के आध्यात्मिक आधिदैविक आधिभौतिक

अर्थ दिखाये हैं। द्यु लोक में सूर्यलोक नहीं आता। 'क' शब्द पर प्रजापति अर्थ किया है। यास्क ने पहिले व्युत्पत्ति कही, फिर कहा —'अर्थनित्यःपरीक्षेत' [नि० २।१]। आप कहते हैं कि यास्क ने 'गो' शब्द की व्युत्पत्ति नहीं की। किन्तु वह भी आगे चल कर दी है। 'गमयतोबूनिति'। [नि० २।५]।

आपको पौने चार घण्टे का समय मिलने से पांच नये विषय छेड़ दिये। हमारे पास उनका उत्तर देने के लिये समय बहुत कम है। मुद्गलवाले मन्त्र में यास्क इतिहास नहीं मानते। यहां पर उन्होंने खण्डन कर दिया। इससे सिद्ध है कि यास्क इतिहास नहीं मानता। आपने अभी बृहद्देवता का प्रमाण दिया था—'संवादं मन्यते यास्क इतिहासं तु शौनकः' इससे भी यही सिद्ध होता है कि यास्क इतिहास नहीं मानता। मुद्गल का अर्थ पहले ११ पदों को जोड़ कर कीजिये। 'मुद्गल' के प्रकरण में 'मुद्गलानी' आता है। वहां स्पष्ट है कि स्त्री और पुरुष युद्ध करें। यह सूक्त का सूक्त ही युद्ध के सिद्धान्त का वर्णन करता है।

गंगा आदि के विषय में—'पाशा अस्यां व्यपाश्यन्त वसिष्ठस्य मुमूर्षतः। तस्माद्विपाडुच्यते पूर्वमासीदुरुञ्जिरा'॥ [नि० ९।२६] उसके बंधन छूट गये, इससे इसका नाम विपाट् पड़ा, पहिले इसका नाम उरुञ्जिरा था। तो सिद्ध हुआ कि यह मन्त्र वसिष्ठ के बाद बना? मैं शास्त्र के प्रमाण से अर्थ करता हूं, जिसमें सौन्दर्य भी है। शरीर में दश नाड़ियां होती हैं। अथर्ववेद में—

'शतस्य धमनीनां सहस्रस्य हिराणाम् ।
'अस्थुरिन् मध्यमा इमाः साकमन्ता अरंसत' ॥ [अ० १।१७।३]

प्रश्नोपनिषद् और योग की पुस्तकों में ७२००० बहत्तर सहस्र नाड़ियां बताई हैं। इनमें से दश को मुख्य माना है। इसके अर्थ समानता से नाड़ीपरक होंगे। जैसे—

'चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासोऽस्य ।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश'' ॥
[ऋक्० ४।५८।३]

इस मन्त्र के अर्थ समानता और कल्पना के नहीं हो सकते। **'ये त्रिषप्ताः'** [अथर्व० १।१।१] मन्त्र में त्रिषप्ताः शब्द का अर्थ क्या है ? पं० विश्वबन्धु जी ने नदियोंवाले मन्त्र का अर्थ नाड़ीपरक किया है। **'पञ्च नद्यः'** का अर्थ किया है—'पांच नदियां हमारे शरीर में हैं मन सिन्धु है'। वसिष्ठ वाले प्रकरण में किसने बन्धन तोड़ दिया ? क्या पानी ने ? और कैसे टूटे ? ऐसे तो वह डूबके मर जाता। आप यह बतलावें कि यहां व्यपाश्यन्त का कर्त्ता कौन है ? हम इसका अर्थ इस प्रकार से करेंगे—**वसिष्ठ अर्थाद्योगी, वसुषु तिष्ठति, 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'**। इस वसिष्ठ के बन्धन इड पिङ्गला आदि में ध्यान लगाने से टूट गये। 'उरुञ्जिरा' नाम कैसे ? जब तक योगी इसमें ध्यान नहीं जमाता, तब तक यह नाड़ियां आयु की हानि करनेवाली होती हैं। इसमें प्रमाण भी है—**'इडा गङ्गेति विज्ञेया पिङ्गला यमुना नदी। मध्ये सरस्वतीं विद्यात् प्रयागादिसमस्तथा'**। इससे सिद्ध है कि ये गंगादि शब्द नाड़ियों के ही वाचक हैं। श्री पं० विश्वबन्धु जी ने भी नाड़ियों परक ही अर्थ किया है। वैदिक साहित्य में कहीं दिखायें कि इस 'विपाट्' का पूर्व नाम 'उरुञ्जिरा' था।

पं० विश्वबन्धु जी ने कहा है कि 'मन्धाता' का क्या अर्थ करोगे? हमारा उत्तर है कि 'मन्धाता' मेधावी का नाम है। नभाक और नाभाक एक ही बात है। **'अन्येषामपि दृश्यते'** [अ० ६।३।१३१] से दीर्घ हो गया। 'नभाक' विद्वान् को कहते हैं। यह तो प्राणों के अन्दर वसिष्ठादि का आरोप है पर्याय नहीं, ऐसा कहा गया था, किन्तु शतपथ ने **'वसिष्ठ ऋषिरिति'** ऐसी मन्त्र की प्रतीक देकर कहा है **'प्राणो वै वसिष्ठ ऋषि'** [श० ८।१।१।६]। **'वाग्वै विश्वकर्मा ऋषिः'** [श० ८।१।२।६]। हम तो कहते हैं कि मन्त्रों में यह नाम व्यक्तिविशेष के नहीं हैं, किन्तु प्राणादि के वाचक हैं। द्रष्टा ऋषि थे, इससे हम इनकार नहीं करते। आप बतायें 'राम' का मुख्यार्थ क्या है? ऋषियों ने वेद से नाम लेकर रख लिये। भूमि बना कर **'भूरिति'** [तै० २।२।४।२] ऐसा प्रकाश कर दिया। शिव-संकल्प सूक्त में 'शिवसङ्कल्प' क्या किसी खास व्यक्ति का नाम है? 'विश्वकर्मा भौवनः' का अर्थ ऋषि नहीं, बल्कि परमात्मा है। पं० विश्वबन्धु जी ने भी यही अर्थ किया है।

श्री पं० राजाराम जी—आज पं० बुद्धदेव जी ने कहा है कि **'इमं मे गङ्गे यमुने०'** आदि मन्त्र में ये नाड़ियां हैं। पर यह नहीं बताया कि यास्क ने क्या बताया है? इन्होंने कह दिया कि ऋषि के बन्धन कैसे खुल गये, वह डूब क्यों नहीं गया? परन्तु निरुक्त का आशय नहीं बताया। महाभारत पढ़ कर देख लो कि ऋषि या देवता उसे डुबाना नहीं चाहते थे। उन्होंने पूछा है कि 'व्यपाशयन्त' का कर्त्ता कौन है? **'व्यपाशयन्त'** तो यहां पर कर्मकर्त्ता में प्रयोग है, और आप कर्त्ता पूछते हैं। पण्डित जी ने इस पर प्रकाश नहीं डाला—**'तदेतत्परुच्छेपस्य शीलम्'** [नि० १०।४२]। इसका मतलब है कि वह मन्त्र परुच्छेप की कृति है। कल पं० ब्रह्मदत्त जी ने कहा था कि वेद में जो इतिहास आते हैं, वह और-और अर्थों में लगाये गये हैं। उन्होंने **'अहल्यायै जारः'** [श० ३।३।४।१८] उदाहरण के रूप में पेश किया। परन्तु यह ब्राह्मण का वाक्य है, वेद का नहीं। आर्यसमाज ब्राह्मण ग्रन्थों को वेद नहीं मानता। यह पाठ 'षड्विंश ब्राह्मण' में आया है। कुमारिल ने ब्राह्मण को वेद मानकर यह पाठ लगाया है।

इसी तरह पण्डित जी ने कई स्थलों के विषय में कहा कि यह भी अर्थवाद माना है। परन्तु यह अर्थवाद भी इतिहास में आ जाता है, मीमांसक ऐसा ही मानते हैं। निरुक्त ३।१७—

'प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्।
अङ्गिरस्वन् महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम्'॥

'प्रियमेधः प्रियास्य मेधा। यथैतेषामृषीणाम् एवं प्रस्कण्वस्य श्रुणु ह्वानम्।'

जिस प्रकार हे देवता! तूने इन ऋषियों [प्रियमेधवत् अत्रिवत् अङ्गिरस्वत्] की सुनी, इसी प्रकार मुझ 'प्रस्कण्व' की टेर सुन। **'प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः'** [नि० ३।१७]। आप देखिये, यास्क इतिहास मानता है। यह प्रमाण आपके विरुद्ध पड़ता है। पण्डित जी ने एक भेद किया था—जड़ इतिहास और व्यक्ति इतिहास। मुझे समझ में नहीं आया कि पण्डित जी का इससे क्या मत-लब था? जड़ का प्रतिवादी चेतन होता है।

पण्डित जी ने कहा कि—**'बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे'**। [वैशे० ६।१।१] यह भी आपके विरुद्ध पड़ता है। आर्यसमाज के सिद्धान्त को जड़ से काटता है। प्रशस्तपाद प्रत्यक्ष और अनुमान

यह दो प्रमाण मानता है। शब्द को अनुमानान्तर्गत माना है—'**श्रुतिस्मृतिलक्षणोऽप्याम्नायो वक्तृप्रामाण्यापेक्षः तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्, लिङ्गाच्चानित्यो, बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, बुद्धिपूर्वो ददातिरित्युक्तत्वात्**'। [वै० प्रश० पृष्ठ २१३] वाक्य-रचना के होने से वेद नित्य नहीं हैं, किन्तु बनाये हुये हैं। वक्ता के प्रामाण्य की अपेक्षा से आम्नाय का प्रमाण्य होता है। प्रामाण्य तब होता है, जबकि कहनेवाला आप्त होता है। 'लिङ्गाच्चानित्यम्' यह स्पष्ट कहा है कि आम्नाय अनित्य है। आगे पढ़ा है—'**बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, बुद्धिपूर्वो ददाति**' फिर प्रश्न है कि उसे प्रमाण कैसे मानें, तो कहा—'**वक्तृप्रामाण्यापेक्षः**'।

इस पर '**कन्दलीकार**' ने स्पष्ट प्रकाश डाला है—'**प्रामाण्यं दोषाभावप्रयुक्तत्वात्**'। नित्यत्व-प्रयुक्त नहीं, मन के नित्य होने पर भी घबराहट के समय उलटे ख्याल पैदा होते हैं, किन्तु चक्षु के अनित्य होने पर भी ज्ञान ठीक होता है, यदि दोष न आये। प्रामाण्याप्रामाण्य दोषाभाव पर निर्भर है।

पं० भगवद्दत्त जी ने दावा किया था कि हम १२ मिनटों में उड़ा देंगे। आपने प्रमाण दिया—'**दिष्टच् दितार्थविभासनार्थं स इतिहास इत्युच्यते**' [नि० दुर्ग टीका पृष्ठ ८५८]। परन्तु इसका अर्थ नहीं बताया। 'देवातिथि' को उन्होंने गलत कहा था, अब मैं फिर कहता हूं कि इसे गलत सिद्ध करें। पण्डित जी इन दोनों बातों को निश्चय करके बतायें।

श्री पं० आर्यमुनि जी—आर्य सिद्धान्त पर बड़ा जोर दिया जाता है। कल आर्य सिद्धान्त की व्याख्या की गई कि जो सत्य सिद्ध हो जाय, वही आर्य सिद्धान्त है। आज हमें जोर दिया जाता है कि आर्यसमाज संहिता को वेद मानता है, ब्राह्मण को नहीं। आप यदि उन मीमांसकों को पेश करते हैं, तो उनकी सब बातें क्यों नहीं मानते ? यहां चालीस-पचास वर्ष शास्त्रार्थ करते हो गये, सदा यही होता रहा कि एक अंश जो अभिप्रेत हो, वह पेश किया जाता है। आप भी वैसा ही करते हैं। शङ्कर वेद को निरपेक्ष प्रमाण मानता है। जिस अंश में वह मिलता है, उससे कैसे इन्कार कर सकते हैं ?

बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे [वै० ६।१।१]। आप वेद को बनाने का सिद्धान्त क्यों मानते हैं ? क्या यह आर्य सिद्धान्त है ? यदि आप यथाश्रुत ही अर्थ मानते हैं, तब '**मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः**' [ऋक्० ६।५५।५] इसका क्या अर्थ करेंगे ? यहां बुद्धिपूर्वक माता=पृथिवी दिधिषु=सूर्य यह अर्थ करेंगे, तो आप अर्धजरती न्याय करते हैं। वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। सत्य का अर्थ अस्ति है, आप उनमें से अप्सरा भूत प्रेत जुआ आदि निकालते हैं। जब ये चीजें हैं, तो सत्य विद्याओं का पुस्तक कैसे है ?

एक आत्माराम है, जिसने गोवध के मन्त्र आपसे अधिक निकाले हैं। '**ये वाजिनं परिपश्यन्ति पक्वं**'' [ऋक् १।१६२।१२] इत्यादि मंत्र से जिस तरह मांस का पकाना निकालते हैं, उस तरह बहुत सी बातें निकल सकती हैं। मेरे ख्याल में जैसे इतिहास निकाला जा रहा है, इस प्रकार 'गोवध' भी निकाला जा सकता है। '**मातुर्दिधिषुमब्रवम्**' [ऋ० ६।५५।५] पिता और पुत्र पर जोर दिया जाता

है, इसमें अर्थ माना क्यों नहीं किया जाता ? मुझे फिकर है कि जब मैं हरप्रसाद जी के पास गया, तब उन्होंने मुझे एक बात सुनाई कि एक बार एक वैश्य की छाती पर से चूहा निकल गया, तब उसने रोना-पीटना शुरू किया, और कहा कि आज मेरी छाती पर से चूहा निकला, कल गाय घोड़ हाथी भी निकलने लगेंगे। तब तो वह खासी सड़क बन जायगी। इसी प्रकार आप इस आर्य-समाज को भी सड़क बनाते हैं, किन्तु समाज के सिद्धान्तों में आस्था रखते नहीं। अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैत भी इसी तरह से समाज के अन्दर आ जायेगा। आप भाष्य में कहीं सिर नीचे और टांगें ऊपर कर देते हैं, इसका क्या मतलब है ?

श्री पं० भगवद्दत्त जी—मुझे अवकाश नहीं मिला कि जो बातें मैंने रखनी हैं, उनको क्रमबद्ध करूं, किन्तु उत्तर सबका दूंगा। पं० वास्देव जी कहते हैं कि अर्थ के आश्रय से व्युत्पत्ति होती है। इसको हम भी मानते हैं, और स्वामी जी भी मानते हैं। वह कहते हैं कि इस प्रकार अर्थ की प्रतीति होती है। जिनका अर्थ भूल गया है, वहां निर्वचन करके अर्थ करना चाहिये। निरुक्त का पाठ है—'**अर्थ नित्यः परीक्षेत**' [नि० २।१], इसे हम भी मानते हैं। हम कहते हैं कि 'कुरुङ्ग' का अर्थ भूल गया है, इसलिये व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर प्रकरणानुसार अर्थ करते हैं। आप स्वयं ही सिद्धान्त बनाते हैं, और आप ही फंसते हैं। स्वामी जी पहिले शब्दों का अर्थ निश्चत कर लेते हैं, फिर वाचक-लुप्तोमालङ्कार लिखते हैं।

दुर्ग से सैकड़ों वर्ष पहिले आनेवाले आचार्य निरुक्त के तेरहवें-चौदहवें अध्याय को निरुक्त का Part मानते हैं। वररुचि भी इसी प्रकार मानते हैं—'**अथैताः अतिस्तुतयः इत्याचक्षते,**'—**सोऽग्नि-मेव प्रथममन्वाह**' [नि० १३।१]। यह निघण्टु यास्क का बनाया हुआ है, ऐसा पं० विश्वबन्धु जी भी मानते हैं। मैंने पुष्ट प्रमाणों से सिद्ध किया है कि यास्क से पहिले भी औपमन्यव शाकपूणि आदि के निघण्टु विद्यमान थे, तथा उन्होंने उनकी व्याख्यायें भी लिखी थीं। उन सब ने अतिस्तुति के देवताओं का संग्रह किया, और अग्नि को ही प्रथम देवता लिखा। उसी का ख्याल करके निरुक्तकार ने कहा है—'**सोऽग्निमेव प्रथममन्वाह**' [नि० १३।१]। दुर्गाचार्य ने भी इसी तरह का अर्थ किया है।

यास्क आत्मा का वर्णन तथा ब्रह्म का वर्णन करनेवाले मन्त्र भी देता है। निरुक्त ३।१२ में—'**अथाध्यात्मं यत्र सुपर्णाः सुपतनानि इन्द्रियाणि**' सुपर्ण शब्द का इन्द्रिय अर्थ किया है। यजुर्वेद के एक मन्त्र [अ० १३।५४] का अर्थ करते हुये शतपथ ब्राह्मण में "**प्राणो वै वसिष्ठ ऋषिः**' [श० ८।१।१।६] वसिष्ठ का अर्थ प्राण किया है। जैसे मैं कह चुका हूं कि '**निरुक्त का प्रधान विषय देवतावाद है**', उसका निरूपण करता हुआ अर्थ भी करता है। आपने—'**मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुः**' [श० ११।१।६।१०] पेश किया। मैं चैलेंज करता हूं कि सारे वैदिक लिटरेचर में 'माया' का वह अर्थ नहीं होता, जो काव्यों में होता है। 'माया' का अर्थ 'प्रज्ञा' ही है।

पं० राजाराम जी ने निरुक्त की भूमिका में लिखा है कि 'यह निघण्टु कश्यप प्रजापति का बनाया हुआ है। वह अत्यन्त प्राचीन है, और ययाति तुर्वश आदि पीछे हुये हैं। तो फिर [सामान्य] मनुष्य नाम के सिवाय और किसका आ सकता है ? इन बातों को छुआ भी नहीं।

अब पं० विश्वबन्धु जी का उत्तर देता हूं। इन्होंने योरोपियन्स के ऐतराज उठा कर रख दिये। आपका कर्त्तव्य था कि आप उनका उत्तर देते। मैं यत्न कर रहा हूं, परन्तु अकेला आदमी हूं। यदि कुछ जवाब देना था, तो दोनों देते। योरोपियन लोग तो मान भी जायेंगे। परन्तु यहां आग्रह बहुत बढ़ा हुआ है। आपने कहा कि यास्क का यह मत है कि **मन्त्र बनाये गये हैं**। पं० विश्वबन्धु जी ने कहा—'**तत्परुच्छेपस्य शीलम्**' [नि० १०।४२]; '**कर्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः**' [नि० ३।११]। आप ईमानदारी से कहें कि क्या यास्क 'मन्त्रद्रष्टा' नहीं मानता? फर्ज कीजिये कि यह ठीक है कि 'मन्त्रद्रष्टा' नहीं मानता, तो भी संगति तो लगानी पड़ेगी। पुराने आचार्य समन्वय ही करते रहे। अपने मत को बना कर प्रधानतया अपने मत के अनुकूल वाक्यों को लेकर सिद्धान्त बनाते रहे। आपने दो वाक्य उठाये, और अपना पक्ष बना लिया।

पं० राजाराम जी ने कहा कि—'**त्रितं कूपेऽवहितमेतत् सूक्तं प्रतिबभौ**' [नि० ४।६]। **प्रतिबभौ** का अर्थ है—'प्रादुर्भूत हुआ', बनाया नहीं। निरुक्त ने प्रतिज्ञा की '**ऋषिदर्शनात्**' [नि० २।११]। इस प्रतिज्ञा को छोड़ कर आप उसके नाम मन्त्र बनाना मानना मढ़ते हैं। **इसके** लिये वह ब्राह्मण [तै० आ० २।६] का प्रमाण भी देता है—'तद् **यदेनांस्तपस्यमानान् ब्रह्म स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् त ऋषयोऽभवन्, तदृषीणामृषित्वमिति ह विज्ञायते**' [नि० २।११]। '**परुच्छेपस्य शीलम्**' [नि० १०।४२] का अर्थ है कि परुच्छेप के देखे सूक्तों में यह शील है, उसके बनाये नहीं। आम तौर पर ऋषि मन्त्रों को Quote करते हुये सूक्तों का स्व भाव बतलाने के लिये कहते हैं कि परुच्छेप के देखे हुये सूक्तों में ऐसा आया है।

'**अर्चन् हिरण्यस्तूप ऋषि [रिदं सूक्तं प्रोवाच**'] [नि० १०।३२] के विषय में पं० विश्वबन्धु जी कहते हैं कि यह हिरण्यस्तूप का अपना कृत सूक्त है। परन्तु '**आर्षानुक्रमणी**' में लिखा है—'**सविता सूक्तस्य चार्चन् हैरण्यस्तूप** एव सः' [आर्षानु० मं० १० श्लोक ७७]। '**अर्चन्**' **मन्त्र में** से लेकर नाम रखा गया है। मन्त्रों में शब्दों को देख कर ऋषि लोग अपना नाम रखा करते थे। यह 'अर्चन्' शब्द वेद में मौजूद है। इसी प्रकार से गृत्समद् आदि नाम। अब भी यदि दुराग्रह दूर हो जाय, तो ठीक है।

पं० विश्वबन्धु जी ने देखा कि सब लोग पं० राजाराम जी की किताबों पर रगड़ा चढ़ा रहे हैं। इसलिये उन्होंने मेरी किताब पर भी कृपादृष्टि करने का यत्न किया। आपने जो प्रमाण गाथा और नाराशंसी के विषय में दिया, वह आपने गलत पढ़ा। '**ओमित्यृचः प्रतिगर एवं तथेति गाथायाः ; ओमिति वै दैवं तथेति मानुषम्**' [ऐ० ब्रा० ७।१८] आपने यह पाठ नहीं पढ़ा। इसका अर्थ आपका मैकडानल करता है कि ऋचायें दैवी हैं, और गाथायें मनुष्य की बनाई हुई हैं। मैंने जो आगे कहा कि दो प्रकार की गाथायें हैं—लौकिक तथा वैदिक। सरल भाव होने के कारण यह नहीं कहा कि ब्राह्मण की गाथायें मानवीय, और वेद की गाथायें दैवी हैं। आपने मेरी बात को गलत तौर पर प्रकट किया। वेद की गाथायें वैदिक हैं, वेद की नाराशंसी वैदिक हैं। मनु ने कहा—

'सर्वेषां तु स नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे॥ [मनु० १।२१]

इसको किसी ने नहीं छुआ।

आप कहते हैं कि मनु० में एक 'तशा' ऋषि लिखा है। मनुस्मृति को सब स्कालर्स Scholars प्राचीन मानते हैं। स्वामी जी ने इसे सृष्टि के आदि में माना है। मैंने इसे Chronologically बहुत प्राचीन सिद्ध किया है, उसका खण्डन करें। आप कहते हैं—'**मनोर्ऋचो भवन्ति, यत्किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजानाम्**' [मैत्रायणी २।५]। मनु कई हुये हैं, क्या आपने निश्चय कर लिया है कि यह कौनसा मनु है ? मैंने कहा था कि मनुस्मृति ब्राह्मणग्रन्थों से पहिले है। प्रक्षेपों के होते हुये भी यह मनुस्मृति तीन हजार साल पुरानी जाती है, वह लौकिक भाषा में है।

'कौटिल्य' ने अपने 'अर्थशास्त्र' में 'बृहस्पति' के अर्थशास्त्र के प्रमाण दिये हैं। 'बृहस्पति' का 'अर्थशास्त्र' जिसको महाभारत अति प्राचीन मानता है, वह सर्वथा लौकिक भाषा में है। 'पञ्चशिखाचार्य्य' के सूत्र भी लौकिक भाषा में हैं। उससे पहिले सांख्य के अनेक ग्रन्थ लौकिक भाषा में हैं। यह मानते हैं कि—'वैदिक भाषा लोक में बोली जाती थी। ऋषियों ने मन्त्रों को बनाया। ऋषियों के सूक्तों में परस्पर में विरोध है। किन्तु स्वामी का सिद्धान्त है कि—'**वेदशब्देभ्यः एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे**' [मनु० १।२१]। वेद से लेकर सब नाम रखे गये, अर्थात् सृष्टि के आरम्भ से ही वैदिक और लौकिक दोनों भाषायें विद्यमान हैं। वेद-भाषा बोली कभी नहीं गई, इसलिये 'तुर्वश' 'ययाति' आदि शब्द अति प्राचीन हैं।

आप कहते हैं कि भगवद्दत्त कहता है कि—'**तदेतदुक्त-प्रत्युक्तं पञ्चदशर्चं बह्वृचाः प्राहुः**'। श० ११।५।१।१०। बह्वृच कहते हैं कि यह सूक्त पन्द्रह मन्त्रों का है, यह मैंने लिखा है। यह पन्द्रह मन्त्रोंवाला सूक्त किस शाखा का है, यह मैंने कहा तो कौनसा पाप किया ? स्वामी जी वेदों की अनेक शाखायें मानते हैं। '**सप्तद्वीपा वसुमती त्रयो लोकाश्चत्वारो वेदाः साङ्गाः सरहस्या बहुधा भिन्ना एकशतमध्वर्युशाखा सहस्रवर्त्मा सामवेद एकविंशतिधा बाह्वृच्यं नवधाऽथर्वणो वेदः**' [महाभाष्य १।१।१]। ऋग्वेद की इक्कीस शाखायें हैं, जिनमें एक मुख्य है। यह पन्द्रह मन्त्रोंवाला सूक्त किस शाखा में है, यह निश्चित नहीं। परमात्मा ने ही मूल वेदों में इस प्रकार पाठान्तर रखकर अर्थ समझाने की शैली बताई। ऋषियों ने इसी प्रकार किया। जैसे वेदों में 'सर्वतो वृत्वा' (?) पाठ है, शाखा में उसकी जगह 'विश्वतो वृत्वा' (?) पाठ है।

मेरे हृदय में भी कई आक्षेप होते हैं। आक्षेप सच्चाई को ढूंढने के लिये किये जाते हैं। उनसे विश्वास नहीं हिलते। यजुर्वेद में 'अश्वमेध' के प्रकरण में 'अमुष्य' आदि शब्द आते हैं, शाखाओं में उनकी जगह 'भरत' आदि राजाओं के नाम डाल दिये हैं। यह यजुर्वेद की 'माध्यन्दिनी संहिता' सबसे प्राचीन है। वहां—'**मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य**' [यजु० २।१३] इस पाठ की जगह शाखा में '**ज्योतिः**' शब्द मिलता है। '**ज्योतिः**' पाठ से '**जूतिः**' पाठ प्राचीन है। आजकल की संहिता में यही पाठ है। महाभारत से लाखों वर्ष पहिले चारों वेद इसी रूप में मौजूद थे। ऋषियों ने वेदों से लेकर अपने नाम रख लिये। '**वेदान्तभाष्य**' में जो शंकर ने—

'**युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः।**
लेभिरे तपसा पूर्वमनुज्ञाता स्वयम्भुवा'॥ [वेदा० शा० भा० १।३।३०]

उद्धृत किया, यहां पर वेदों का इतिहास अर्थ नहीं, किन्तु वेदों के साथ इतिहास प्राप्त किया अर्थ है।

श्री पं० विश्वबन्धु जी - पं० प्रियरत्न जी के भाषण को मैं नहीं समझ सका, इसलिये उनका उत्तर आश्रम में चल कर दूंगा। पं० ब्रह्मदत्त जी ने जो पढ़ा—**'ऋषीणां नामगोत्राणि दृष्ट्वा भ्राम्यन्ति लौकिका:'** [ऋ० प्र० ५।प्र० १] यह पाठ पूरा नहीं पढ़ा, यह धोखा है। अगला पाठ गुम है। मैं पहिले पांच श्लोक पढ़ता हूं। ऋषि सूक्तों में अपना नाम देते हैं। इस सूक्त में **'नोधसो नाम दृश्यते'**। इसी प्रकार 'मैत्रावरुण' आदि नाम आये हैं। झगड़ा बाप के नाम पर है, नाम के विषय में नहीं। ऋ० ६।६२ का ऋषि 'भरद्वाजो बार्हस्पत्य:' है। इस सूक्त के पहिले मन्त्र में **'हुवे जरमाणो अर्कै:'** [ऋक्० ६।६२।१] में जब तक भारद्वाज का अर्थ नहीं जोड़ोगे, तब तक अर्थ नहीं बनेगा। पहिले आप **'अतिथि'** शब्द का स्वर सिद्ध कर दें, फिर मैं **'स्थूर'** शब्द का स्वर सिद्ध कर दूंगा।

कल Biological Theory के सम्बन्ध में कहा गया, वह थ्यूरी नई है। यदि दिमाग के भाग देवता हैं, तो वेद से आध्यात्मिकवाद उड़ गया। आप कहते हैं कि 'जहां अर्थ भूल गया, वहां निरुक्ति की गई है'। पं० भगवद्दत्त जी **'यथैतेषामृषीणाम्'** निरुक्त [३।१७] के इस वाक्य का अर्थ करें। देवतावाद निरुक्त का अवान्तर विषय है, मुख्य विषय निर्वचन है। महाभारत से ज्यादा प्रमाण ऋग्वेद का है। **'ययाति'** के वक्त में जो वेद था, वह उसने पढ़ा होगा। मैं यह पहले उत्तर दे चुका हूं कि वेद में **'ययाति'** आदि के नाम आये हैं। द्रष्टा और कर्त्ता पर मैं कह चुका हूं। **'प्रतिबभौ'** का अर्थ है फुरा, उसे मन्त्र फुरा। इसके लिये प्रमाण ऋग्वेद १।१०५।१७ **'त्रित: कूपेऽवहितो देवान् हवत ऊतये'**। **'हिरण्यस्तूप'** के साथ अर्चन को Propername मान लो। मैंने आपकी गाथा थ्यूरी को गलत पेश नहीं किया। मैंने कब कहा कि यह वही मन्त्र है। मैंने 'बृहद्देवता' और 'अनुक्रमणी' से **'तक्षा'** की दानस्तुति सिद्ध कर दी। **'निर्ममे'** का कर्त्ता कौन है?

श्री पं० ब्रह्मदत्त जी—आपने बोला है कि **'ऋषीणां नामगोत्राणि'** में मैंने धोखा दिया है, यह गलत समझा। सारा पाठ पढ़ें, स्पष्ट है धोखा नहीं। हम तो कहते हैं कि वेद से लेकर नाम रखे गये। वैद्यक में—

> **'वैश्वानर: शिर: पातु विष्णुस्तव पराक्रमम्।**
> **पौरुषं पुरुषश्रेष्ठो ब्रह्मात्मानं ध्रुवो भ्रुवौ॥**
> **एता देहे विशेषेण तव नित्या हि देवता:'** ॥ सुश्रुत सूत्रस्थान अ० ५।२४,२५॥

और देखिये—**'यथा खलु ब्राह्मी विभूतिर्लोके यस्त्विन्द्रो लोके पुरुषेऽहंकार:, आदित्यास्त्वादानं, रुद्रो रोष:, सोम: प्रसाद:, वसव: सुखम्, अश्विनौ कान्ति:, मरुदुत्साह:, विश्वेदेवा: सर्वेन्द्रियाणि सर्वेन्द्रियार्थाश्च, तमो मोह: ज्योतिर्ज्ञानम्'** ॥ चरकशारीरस्थान अ० ५।५]। इस Biological Theory के लिये मैं डा० सत्यकाम जी का धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने मुझे यह समझाई है। Vedic Gods 'वैदिक गोड्स' के लेखक ने भी वैद्यक के इसी प्रकार के प्रमाणों के

आधार पर लिखा है। वेद का अर्थ ज्योतिषपरक भी होता है। कल्पना निराधार नहीं है। वह किस प्रकार से है, यह यदि समय मिलता, तो बतलाता।

'प्रस्कण्व' का अर्थ **'प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्र, मेधाविनः पुत्रः इत्यर्थः'**। **'कण्व'** मेधावी नामों में निघण्टु में पढ़ा है। 'तुर्वश' के लिये जाति उपजाति आपकी कल्पनामात्र है। निरुक्त में तो यही लिखा है—**'एतावन्त्यस्य सत्वस्य नामधेयानि'** [नि० १।२०]। यह कल्पना आपकी निराधार है। **'आह्वदुषा अश्विनौ आदित्येनाभिप्रस्ता तामश्विनौ प्रमुमुचतुरित्याख्यानम्'**। नि० ५।२१। आदित्य से संयुक्त उषा ने **'अश्विनौ'** को बुलाया। यास्क **'अश्विनौ'** का अर्थ करते हैं—**'तत्कावश्विनौ द्यावापृथिव्याविथ्येके, सूर्याचन्द्रमसावित्येके, अहोरात्राविथ्येके, राजानौ पुण्यकृताविथ्यैतिहासिकाः'**। निरुक्त १२।१। निरुक्तकार के आख्यान का यह स्वरूप है।

आपने मुझे कहा कि—**'अहल्यायै जारः'** इसको मैंने वेद की कथा कहा है, परन्तु मैंने ऐसा नहीं कहा। मैंने तो यह कहा था कि—ऋषि दयानन्द ने यह कथा 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' में दी है, और कुमारिल ने वैसा ही अर्थ किया है जैसा कि ऋषि दयानन्द ने। **'कर्त्ता स्तोमानाम्'** [नि० ६।६] के विषय में 'कृञ्' धातु के अनेक अर्थ पाणिनि ने दिये हैं। **'गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः'**। [अ० १।३।३२] इस सूत्र में 'कृञ्' का अर्थ 'प्रकथन' माना है। तो **'कर्त्ता'** का अर्थ हुआ 'कथन करनेवाला'। 'ऐतरेय ब्राह्मण' भाष्य में **'सायण'** ने लिखा है—**'ऋषिर्मन्त्रकृत्'**। **'ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत् करोति धातुस्तत्र दर्शनार्थः'**। ए० ब्रा० सायण-भाष्य ६।२॥ भट्ट भास्कर ने—**'मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रद्रष्टृभ्यः'**। तैत्तिरीय आ० भट्टभाष्य ७।१॥

'य ईं चकार न सो अस्य वेद य ईं ददर्श हिरुगिन्नु तस्मात्' [नि० २।८] में **'इन्द्र'** मध्यस्थानी क्या है, हमसे पूछा गया है। निरुक्त में कहा है—**'एक एवात्मा बहुधा स्तूयते'**। [नि० ७।४] 'उभयवासी' न्याय से परमात्मा भी मध्यमस्थानी देवता में आ जायगा, क्योंकि परमात्मा सर्वत्र व्यापक है। अथवा—**'अचेतनेषु चेतनवदुपचारः। यथा शृणोत ग्रावाणः'**। [द्र०—महा० ३।१।७] इस महाभाष्य के प्रमाण से इस तरह से यहां विद्युत् में भी चेतनवत् ज्ञान की कल्पना करली है। आगे कहा है कि **'नदीवद्देवतावच्च निगमा भवन्ति'**। [नि० २।२३]। आगे निरुक्त में कहा है—**'अदेवता देवतावत्स्तूयन्ते'**। [नि० ७।४]। यास्क नैघण्टुक तथा प्रधान दो तरह के देवता मानता है। जहां दैवत काण्ड में आयगा वहां प्रधान, अन्यत्र नैघण्टुक। इन्द्र वरुण आदि का 'प्रासादवासी' न्याय से ग्रहण होता है। भाष्यकार लिखते हैं—**'तद्यथा केचित् प्रासादवासिनः केचिद् भूमिवासिनः केचिदुभयवासिनः। ये प्रासादवासिनो गृह्यन्ते ते प्रासादवासिग्रहणेन, ये भूमिवासिनो गृह्यन्ते ते भूमिवासिग्रहणेन। य उभयवासिनो गृह्यन्ते ते प्रासादवासिग्रहणेन भूमिवासिग्रहणेन च'**। महाभाष्य १।१।८॥

इसी तरह से इन्द्र वरुणादि मध्यमस्थानी हैं, किन्तु परमात्मा सर्वस्थानवासी है। उसका ग्रहण सभी तरह से हो जायगा। विश्वामित्र आदि शब्द वेद में आते हैं, ब्राह्मण उनकी प्रतीकें लेकर **'विश्वामित्र ऋषिरिति, श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः'**। श० ८।१।२।६। श्रोत्रादि अर्थ करता है।

स्वामी दयानन्द ने 'कक्षीवान्' शब्द की संज्ञा में ही सिद्धि की है, ऐसा कहा गया था। वहां संज्ञा शब्द लोक के लिये आया है। लोक में यदि 'कक्षीवान्' नाम हो, तो ऋषि का नाम होगा। वेद में 'दृष्टानुविधिश्छन्दसि भवति' कक्ष्यावान् और कक्षीवान् दोनों बन जायंगे। निरुक्त कहता है—'कक्षीवान्' कक्ष्यावान्' [नि० ६।१०], संज्ञा नहीं।

'परुच्छेपस्य शीलम्' [नि० १०।४२] पर 'परुच्छेपस्य मन्त्रदृशः शीलं' [दुर्ग टीका पृ० ८१७] यह अर्थ दुर्गाचार्य ने किया है। 'नाभाकस्य प्रशस्तिभिः' [नि० १०।१५] वह तो इस सूक्त का ऋषि है। क्या वह स्वयं अपनी ही स्तुति करता है? भागवत में कहा है—'भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः' भाग० १।४।४६। भूतार्थवाद के विषय में आप कहते हैं कि जो बात हो चुकी, उसके विषय में भूतार्थवाद होता है। हम मानते हैं—'स दाधार पृथिवीं' [ऋ० १०।१२१।१] उसने धारण किया, करता है और करेगा, भूतार्थवाद ऐसा होता है। 'प्रियमेधवदत्रिवत्' [ऋक्० १।४५।३] इस मन्त्र के ऋषि दयानन्द के भाष्य की पुष्टि में मैंने स्कन्द का प्रमाण इसलिये दिया था कि स्वामी जी की बुद्धि अगाध थी। उनको यह सब बातें मालूम थीं, और उन्हीं के अनुसार यह अर्थ किये। ऋषि दयानन्द के विषय में यह कहना कि वह इतिहास मानते हैं, यह अन्धेर है। वह स्पष्ट भूमिका में कहते हैं—'ताः शिष्टैः कदाचिन्नैवाङ्गीकर्त्तव्या'। आपने वामदेव्यं के विषय में जो कहा है, वह किसी का मिलाया हुआ है। आपने हमारी औपचारिक प्रक्रिया को माना, पर पूरी तरह से नहीं। जो आपने कुल्हाड़ेवाला अर्थ किया, वह ठीक नहीं। 'चत्वारि श्रृङ्गा त्रयोऽस्य पादाः' [ऋक्० ४।५८।३] इसके अर्थों के सम्बन्ध में हमने जो प्रश्न किया था, उसका उत्तर आपने नहीं दिया।

श्री स्वामी सर्वदानन्द जी—यह जो तीन-चार दिन से संवाद आप सुन रहे हैं, इससे लाभ तो हुआ ही है। परन्तु यह उसी प्रकार का है, जैसे सनातन धर्म और आर्यसमाज का होता है। चाहिये तो यह था कि एक पक्ष मान लिया जाता। स्वामी जी तो यही मानते हैं कि वेदों में इतिहास नहीं। जैसे गंगा यमुना सरस्वती आदि नदियों के नाम प्रतीत होते हैं, परन्तु यह नाड़ियों के नाम हैं। वेद में इतिहास विद्या बीज के रूप में होनी चाहिये। परन्तु राजा और ऋषियों का इतिहास नहीं होना चाहिये। दूसरा—यह कहा गया है कि स्वामी जी का उपहास किया जाता है, मुझे विश्वास नहीं होता। स्वामी दयानन्द जैसे उपकारी पुरुष का उपहास कौन कर सकता है? यह गलतफहमी प्रतीत होती है। तीसरी बात है—लोकव्यवहार में निपुण पुरुष ही वेदार्थ को समझ सकता है—'लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतेः' अभ्यास से जो मन्त्र लग चुके हैं लग गये, जो नहीं लगे अभ्यास करना चाहिये।

समाज ने बहुत से काम किये, परन्तु जिसके लिये इसका जन्म हुआ अर्थात् संस्कृत की रक्षा के लिये इसने कुछ नहीं किया। वेदाभ्यास से ही वेदार्थ प्रतीत होते हैं, जैसे विज्ञान की बातें परस्पर के संघर्ष से निकल आई हैं। यह सन्देह दिमागों से निकल सकते हैं कि आर्यसमाज में आदमी पैदा नहीं होंगे। आज विश्वबन्धु जी आपके सामने सन्देह उपस्थित कर रहे हैं। क्या आपके सामने सन्देह आने नहीं हैं? आज नहीं, तो कल सही। ऋषि दयानन्द ने आनेवाली शंकाओं का उत्तर दिया था, परन्तु उन्हें यह थोड़ा पता था कि आर्यसमाज चौकड़ी लगा कर बैठ जायेगा। आर्य-

समाज और हिन्दुत्व बहा चला जा रहा है। अंग्रेजी पढ़ने के लिये लाखों रुपया लग रहा है। संस्कृत पढ़ने के लिये लघु-कौमुदी पढ़ लो, वेद अपने आप लग जायगा ? क्या स्वामी जी के पीछे कोई संस्कृत का ग्रन्थ लिखा गया ?

विदेश में प्रचार करने के लिये अहमदियों की तरफ से ख्वाजा कमालउद्दीन गया, और आर्यसमाज की तरफ से मथुराप्रसाद भजनीक। आदमियों की कमी ही तो कारण है, इनके बनाने का यत्न करो। जैसे अंग्रेजी के लिये यत्न किया जाता है, वैसे संस्कृत के लिये भी करो। संस्कृत बड़ी अच्छी चीज है, किन्तु वह अपने बल से ही चल रही है। प्राचीन मातृ-भाषा का इतना ही गौरव है। आपने गुरुकुल खोले कालेज खोले, पर इससे कुछ नहीं बनता। आप भी रुपयों को मुर्गी के अण्डे को तरह दबाये बैठे रहेंगे। वेदों के विज्ञान आदि के लिये रुपया खर्च होना चाहिये। रिसर्च के लिये विद्वान् आदमी मिल बैठें तो अच्छा है। बनाने का यत्न करो। रुपया इकट्ठा करने से क्या लाभ ? विद्याशत्रु समाज को कहना चाहिये। देखो अंग्रेजी विद्या कितनी तरक्की कर गई। अंग्रेज तो काम संभाल लेते हैं, परन्तु तुम्हारे अधीन जो काम हैं, वह बिगड़ते हैं। अपने को कायदे में लाओ, अपने गुणों से ही उच्च हो सकोगे। तीस-तीस वर्ष नियम पालनेवाले लोग समाज में आकर अनियमित हो जाते हैं। स्वामी अच्युतानन्द जी को वेद से बड़ा प्रेम है, उनके पास ४० हजार रुपया है, वह वेद के काम में लगा देवें।

श्री लाला देवीचन्द जी—मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि ऐसी पण्डितों की कान्फ्रेंस बुलाई गई, जिसमें शास्त्रीय विचार हुआ। परन्तु शोक है कि बहुत से विद्वान्, जो इसमें शामिल हुये, वह बजाय इसके कि ऐसे ढंग पर विचार करें कि जिससे स्वामी जी के सिद्धान्त की पुष्टि हो, वह Personal बातों से ऊपर नहीं उठ सके। यह भी ख्याल हो सकता है कि यहां के विचार सुन कर अश्रद्धा होती या Scholars स्कालर्स में अविश्वास हो। परन्तु इससे बड़ा लाभ हुआ है। सभा को यह कान्फ्रेंस अब समाप्त नहीं कर देनी चाहिये। ऐसी कान्फ्रेंस को लाहौर समाज के उत्सव तथा प्रादेशिक सभा के उत्सव पर मीटिंग हुआ करे। मैं चाहता हूं कि पं० विश्वबन्धु जी तथा पं० राजाराम जी ऐसे मन्त्रों की लिस्ट, जिनमें इतिहास प्रतीत होता है, सभा के पास भेज देवें। सभा पण्डितों के पास भेज देवे। अगली मीटिङ्ग में कुछ हल हो जाये। निरुक्त को ऐसी कोई बात नहीं, हमें सामान्य वेद मन्त्रों पर विचार करना चाहिये।

यह भी कहा गया है कि क्या हर्ज है कि यदि आर्यसमाज अपनी Position को Modify कर देवे, सिद्धान्तों को Change कर देवे। परन्तु यह इस परिषद् या अन्य किसी सभा को अधिकार नहीं है कि वह आर्यसमाज के सिद्धान्तों को Change कर सके। हमारे Scholars (स्कालर्स) को चाहिये कि दूसरे आचार्यों के अनुयायियों की तरह ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों को पुष्ट करें। विद्वानों का गौरव इसी बात में है। अगर हम Recoriale न हो सकें, तो हमारा प्रेम पं० विश्वबन्धु जी तथा पं० राजाराम जी के साथ कम नहीं होना चाहिये। उनको समझाने की कोशिश करनी चाहिये, जिससे हठ न बढ़े। परस्पर प्रेम तथा सहानुभूति से ऐसी बैठकें फिर भी होनी चाहियें।

श्री नारायण स्वामी जी—मैं लाला देवीचन्द जी से सहमत हूं कि इस सभा से लाभ हुआ।

शुरू में बताया गया था कि पं० विश्वबन्धु जी को तथा पं० राजाराम जी को वेदों के सम्बन्ध में संदेह है, उनकी निवृत्ति हो जाय। परन्तु इतने विचार से पता लगा कि पं० **विश्वबन्धु जी का निश्चित पक्ष है कि वेदों में इतिहास है।** यह Western Scholars का पक्ष है। यदि पहिले से हो इस बात को उनका पक्ष मान कर चलाया जाता, तब अच्छा होता। और साथ में **यह भी पता लगता है कि उनको जिज्ञासा भी नहीं है।** यदि जिज्ञासा होती, तो इस बात पर क्यों अड़ते कि अमुक मेरे पीछे न बोले। उनको जिज्ञासा है, यह तो वही मान सकता है जिसके दिमाग में बुद्धि का खाना खाली हो। यह एक सच्चाई है, चाहे कड़वी है। इसमें पं० विश्वबन्धु जी का दोष नहीं। इसमें हमारी शिक्षा-पद्धति का दोष है। परन्तु फिर भी उन्हें गम्भीरता से विचार करना चाहिये। यह परिणाम इस सम्मेलन का अवश्य निकलेगा।

जो विषय उपस्थित हुआ 'कुरुङ्ग' वाले मंत्र पर हो रहा। यदि वेद में इतिहास मान लिया जाये, तो वेद का बहुत-सा भाग निकम्मा हो जायगा। वेद ऋत है, ऐसी सच्चाई है जो तीनों कालों में एक जैसी रहनेवाली है। आम तौर पर 'स्वाध्याय' शब्द वेद के स्वाध्याय के लिये रूढ है। अब कल्पना करो यदि कुरुङ्गवाले मंत्र का अर्थ यह हो कि—कुरुङ्ग राजा था, उसने दान दिया—तो हम उसका स्वाध्याय क्यों करें? व्यर्थ में भाट क्यों बनें? यदि दूसरे पक्षवालों का अर्थ, जो कि यौगिक है, मान लिया जाये, तो वह बड़ा गौरवयुक्त है। वेद यदि हमको प्यारे हैं, तो ऐसे ही सुन्दर अर्थ होने चाहियें। नहीं तो चाहे हम कहें कुछ भी, वास्तव में वेद हमको प्यारे नहीं हैं।

जिन लोगों ने प्राचीन भाषा पर विचार किया है, वह जानते हैं कि उनके अनेक तरह से अर्थ किये गये हैं। इस तरह से वेद के अनेक अर्थ होने का कारण यही है कि वेद का पठन-पाठन नहीं रहा। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के बीस तरह के अर्थ नहीं हो सकते। नियामक होने की बात तो अभ्यास से ही ठीक होगी। परन्तु बाईस-चौबीस करोड़ आदमी ऐसे मौजूद हैं, जिनकी Treditions आदि से वेद के अर्थ निकल सकते हैं, हमें यत्न करना चाहिये। योरोपियन्स के अनुवाद अब भी वैसे बेहूदा हैं, जैसे सदा से रहे हैं। मैंने ग्रिफिथ के चारों वेदों का भाष्य पढ़ा। मेरे दिल में बहुत बार आया कि मैं उसे फैंक दूं, परन्तु दिल रोक कर पढ़ा। जैसे वेद में **'अज एकपात्'** शब्द आया, उसका अर्थ है परमात्मा के एक अंश में। परन्तु ग्रिफिथ ने अनुवाद किया है One footed goat। उनमें अच्छी बातें भी हैं, परन्तु वह तुकें मिलाते हैं। हमारे साथ Traditions हैं। हमारा पक्ष प्रबल है। हमें चाहिये कि हम यत्न करें। मैंने कई बातें नोट की हैं, समय मिलने पर विचार करूंगा।

श्री प्रधान जी—जिस बात पर हमने विचार किया, वह इतनी सादी नहीं जितनी कि समझी जाती है। स्वामी जी कहते हैं कि उन्होंने निरुक्त के आधार पर, ब्राह्मण ग्रंथों के आधार पर वेद-भाष्य किये। किन्तु साथ ही यह भी कहा है कि ये पुस्तकें परतः प्रमाण हैं, स्वतः प्रमाण तो वेद है। जहां कोई ऐसा वचन आया, जो कि वेद-विरुद्ध है, तो उसे उन्होंने प्रामाणिक नहीं माना। मेरी इच्छा थी कि विचार निरुक्त के उन स्थलों पर ही रहता, परन्तु साढ़े तीन दिन विचार केवल मन्त्रों के शब्दों के सम्बन्ध और अर्थों के ढंग के सम्बन्ध में होता रहा, यह भी जरूरी है।

इस विषय में नई बात Western Scholars की थी कि आर्य सभ्यता बड़ी साधारण है। जिन ऋषियों के नाम सूक्तों पर लिखे हैं, उन्होंने वह कवितायें बनाईं। वह (पश्चिमी विद्वान्) उन मंत्रों में इतिहास भी मानते हैं, सारा इतिहास वेदों में से निकालते हैं। सायण वेद को अपौरुषेय मानता है, और अपनी भूमिका में लिखता भी है। और टीकाकार भी ऐसा लिखते हैं। निरुक्त के टीकाकार भी एक सिद्धान्त लिखते हैं कि वेद में इतिहास नहीं है। परन्तु सायण अर्थ करते समय फेल होता है। सायण ने निरुक्त या और प्रमाणों से इतिहास भी निकाले। योरोपियन भी उसी के आधार पर इतिहास निकालते हैं। सायण आदि के भाष्य पढ़ने से उन्हें (पश्चिमी विद्वानों को) यह विचार हुआ कि वेद ऋषियों के बनाये हुये हैं, और वे उन्हें वेद का कर्त्ता मानते हैं। परन्तु सनातनधर्मी यह नहीं बताते कि ऋषि कब हुये ? वह मानते हैं कि ऋषियों ने वेद-सूक्त बनाये।

यहां कहा गया है कि कुमारिल आदि पिछले मीमांसक ईश्वर को न मानते हुये भी वेद के नित्यत्व को मानते थे। और नित्य वेद में इतिहास के विषय में यह माना कि यह बातें और यही ऋषि प्रत्येक कल्प में होते हैं। स्वामी दयानन्द ने उन बातों पर विचार किया, European Theory को रिजक्ट किया। सायण की थ्यूरी को मान लिया, परन्तु उसके अर्थों को Reject किया। 'शुनःशेप' की कथा को वेद में इतिहास के रूप में मान लिया जाय, तो यह मानना पड़ेगा कि कोई समय था जबकि आर्य लोग यज्ञ में मनुष्य का मांस डाला करते थे। 'अगस्त्य' ऋषि ने हवन शुरू किया, उसने इन्द्र देवता को हवि न दी, वह रोने लगा। वह सूक्त इन्द्र का रोना है। यदि इस प्रकार के अर्थ मान लिये जायें, तो आर्य लोगों का दूसरों के समाने ठहरना मुश्किल हो जायेगा। आपको वेदों को तिलाञ्जलि देनी होगी।

ऋषि के सामने यह प्रश्न आया। स्वामी जी ने तमीज की कि ये ऋषि मन्त्र-द्रष्टा हैं, मन्त्र-कर्त्ता नहीं। इस पर आक्षेप है कि ऋषियों के नाम मंत्रों में आते हैं। यदि यह मान लिया जाये कि उन ऋषियों ने वे मन्त्र बनाये, जैसे पाराशर ऋषि जो कि व्यास के पिता थे, ने सूक्त बनाये, तो यह बात कैसे संगत हो सकती है कि व्यास से पहिले भी सारा वेद पढ़ा जाता था ? यह मामूली सवाल नहीं है। इस तरह से यह मानना पड़ेगा कि वेद आदि सृष्टि में नहीं हुआ, या विकासवाद को मानना पड़ेगा। इसे मानते हुये वेदों की थ्यूरी छोड़ देनी पड़ेगी। जैसे मुद्गल का सूक्त है। ऋषि कितना हास्यापद हो जाता है कि हमने मुद्गल से अपने शत्रुओं तथा बैल आदि को जीत लिया। यह बुनियादी भेद है, मामूली भेद नहीं। यदि आप इतिहास मानेंगे और सूक्तों पर लिखे ऋषियों को यदि वेद के मन्त्रकर्त्ता मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी माननी पड़ेगी। और वेदों की थ्यूरी छोड़नी पड़ेगी। स्वामी जी की थ्यूरी है कि ऋषि मंत्रद्रष्टा हैं, कर्त्ता नहीं।

अब यह ठीक है या गलत, इस विषय में जिनको दयानन्द पर विश्वास हो, ठीक मानेंगे। यदि दूसरी बात मानेंगे, तो वेदों की पोजीशन इञ्जील की तरह हो जायगी। और इस तरह से मानना पड़ेगा कि वेदों में कई सूक्त मनसूख हो गये, अब यह सूक्त मानने चाहियें। परन्तु कोई प्रमाण इस विषय में नहीं है। अब आपको चाहिये कि तीनों Hypothesis का मुकाबला करके विचारें कि क्या केवल स्वामी दयानन्द की थ्यूरी में दिक्कतें हैं, या दूसरी थ्यूरीज में भी दिक्कतें हैं।

स्वामी जी ने कहा है कि ब्रह्मा से लेकर जैमिनिपर्यन्त ऋषि-मुनियों का एक सिद्धान्त रहा है। आप इसे भी विचारें, मुमकिन है आप में से कुछ लोग गलत मानते हों। यूरोपियन्स कहते हैं कि सिद्धान्त भिन्न-भिन्न थे। आप विचारें कि आपको यह थ्यूरी अपील करती है, या नहीं। यदि आप इसे नहीं मानेंगे, तो यूरोपियन थ्यूरी को मानना होगा। इसमें आर्यसमाज की बदकिस्मती है कि स्वामी जी के जीवन ने वफा न की। स्वामी जी चाहते थे वेदों का भाष्य करके फिर थोड़ा-सा आराम करके दर्शनादि पर भी भाष्य करेंगे, किन्तु यह न हो सका।

सिद्धान्त पर विचार करके नतीजे पर पहुंचें, तो अच्छा है। अगर नतीजे पर न पहुंचे, तो वह थ्यूरी माननी पड़ेगी। मैं इस बात को नहीं मानता कि आर्यसमाज ने कुछ नहीं किया। आर्यसमाज ने सनातनधर्म को बहुत परे फेंक दिया। ईसाई या और लोग इसके प्रभाव को महसूस करते हैं। आर्यसमाज कालेज सेक्शन ने दो इन्स्टीट्यूशन कायम किये—रिसर्च डिपार्टमेन्ट और ब्राह्ममहाविद्यालय खोले। दूसरी पार्टी ने गुरुकुल खोले। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने 'यमलोक' वेद से सिद्ध किया। यदि आप स्वामी दयानन्द की थ्यूरी को छोड़ेंगे, तो आपको वेदों को छोड़ कर भाग जाना पड़ेगा।

पं० जगन्नाथ ने एक किताब लिखी है। उसमें लिखा है कि कक्षीवान् ऋषि काकेकस में रहता था, और वहां उसने सूक्त बनाया। यजुर्वेद को रस्मों पर लगाया गया है। आप यजुर्वेद का मुतआलिया करें, और विचारें कि स्वामी जी का भाष्य अधिक अच्छा है या दूसरे भाष्य। उदाहरण के रूप में अश्वमेध को लीजिये। स्वामी जी ने बताया कि **'अश्व'** का अर्थ शतपथ में **'राष्ट्र'** है। योरोपियन्स कहते हैं कि सूर्य है। और कई ऐसा कहते हैं कि घोड़े की बलि दी जाती थी, किन्तु वास्तव में यह सीथियन रस्म थी। शंकर आदि ने 'अग्नि' का आग अर्थ किया, परन्तु स्वामी दयानन्द ने **'परमेश्वर'** अर्थ किया। रिसर्च डिपार्टमेन्ट ने डिक्शनरी निकाली, उससे आपको सहायता मिलती है। मुझे खुशी हुई, जब दो साहिबों ने कहा कि वे वेद में इतिहास नहीं मानते, चाहे निरुक्त के विषय में उनकी राय मुखतलिफ है। आर्यसमाज उनसे पूरा लाभ उठा सकता है।

जब यह सिद्ध करने का यत्न होता है कि वेद-मन्त्रों में इतिहास है, तब घोर युद्ध करना पड़ेगा। मैं इस बात को बड़ा खराब समझता हूं कि आपस में झगड़ा जाय। मैं तो उन्हें ऊंची जगह बिठाकर उन पर फूल डालूंगा। परन्तु व्यक्तिगत बातों को आप अपने दिल से निकाल दें। स्वामी लोगों ने बड़ी तकलीफ उठाई है कि इतना दुःख उठा कर इतनी दूर से यहां पधारे हैं। मैं उनका हृदय से धन्यवाद करता हूं। बाहर से आये पण्डितों का भी मैं बड़ा कृतज्ञ हूं, तथा यहां के पण्डितों का भी धन्यवाद करता हूं। परमात्मा करे कि सौमनस्य बना रहे, और स्वामी जी के सिद्धान्त पुष्ट हों।

शास्त्रार्थ-समाप्त ॥

—:o:—

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित और प्रसारित ग्रन्थ

वेद-विषयक ग्रन्थ

१. ऋग्वेदभाष्य—भाग I (ऋ०भा०भू० सहित) ५०-००; II ४०-००; III ५०-००
२. ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका—यु० मी० सम्पादित सटिप्पण। बढ़िया ४०-००, साधारण ३५-००
३. भूमिका-भास्कर—स्वा० विद्यानन्द सरस्वती। दो भागों में, प्र० भाग १५०-००
४. ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका-परिशिष्ट— ५-००
५. ऋग्वेदानुक्रमणी-वेङ्कटमाधवकृत, व्याख्याकार पं० विजयपाल जी। ४०-००; राजसं० ५०-००
६. कात्यायनीय ऋक्सर्वानुक्रमणी—षड्गुरुशिष्य विरचित संस्कृत टीका सहित १२५-००
७. ऋग्वेद की ऋक्संख्या—यु० मी० ५-००
८. ऋग्वेद-परिचय—पं० विश्वनाथ २५-००
९. यजुर्वेदभाष्य-विवरण—भाग I १४०-००; भाग II ६०-००
१०. माध्यन्दिनपदपाठः—(यजुर्वेद पदपाठ) ६०-००
११. तैत्तिरीय-संहिता-(मूल) मन्त्रसूचीसहित ६०-००
१२. तैत्तिरीय-संहिता-पदपाठः—सजिल्द १२५-००
१३. अथर्ववेदभाष्य—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय १-३ काण्ड ५०-००; ४-५ काण्ड ५०-००; ६ काण्ड ४०-००, ७-८ काण्ड ४०-००, ९-१० काण्ड ४०-००; ११-१३ काण्ड ३५-००; १४-१७काण्ड ३०-००; १८-१९ काण्ड २५-००; २० काण्ड २५-००।
१४. (...) गोपथ-ब्राह्मण—(मूल) ६०-००
१४(अ) ... निघण्टु-संग्रह—धर्मवीर १००-००
१५. वैदिक-सिद्धान्त-मीमांसा—यु० मी० लिखित वेदविषयक १७ निबन्धों का संग्रह। प्रथम भाग ७५-००; द्वितीय भाग १००-००
१६. वैदिक-साहित्य-सौदामिनी—सजिल्द ६०-००
१७. वेदश्रुतिआम्नायसंज्ञा-मीमांसा—यु० मी० ३-००
१८. वैदिक-छन्दोमीमांसा— ,, ,, ३०-००
१९. वैदिक-स्वर-मीमांसा— ,, ,, ३५-००
२०. वैदिक वाङ्मय में प्रयुक्त विविध स्वराङ्कन-प्रकार—युधिष्ठिर मीमांसक ८-००
२१. वेदों का महत्त्व तथा उनके प्रचार के उपाय—युधिष्ठिर मीमांसक १५-००
२२. देवापि और शन्तनु के वैदिक आख्यान का वास्तविक स्वरूप—ब्रह्मदत्त जिज्ञासु ३-००
२३. वेद और निरुक्त— ,, ,, ३-००
२४. निरुक्तकार और वेद में इतिहास—,, ३-००
२५. त्वाष्ट्री-सरण्यू के आख्यान का वास्तविक स्वरूप—पं० धर्मदेव जी निरुक्ताचार्य ३-००
२६. वैदिक-जीवन—पं० विश्वनाथ। स० २०-००
२७. वैदिक-गृहस्थाश्रम—,, ,, सजिल्द ४०-००
२८. वैदिक-पीयूष-धारा—श्री देवेन्द्र कुमार कपूर। अजिल्द १०-००, बढ़िया जिल्द १५-००
२९. क्या वेद में आर्यों और आदिवासियों के युद्धों का वर्णन है? पं० रामगोपाल शास्त्री १२-००
३०. उरु-ज्योति—वासुदेवशरण अग्रवाल २०-००
३१. वेदों की प्रामाणिकता—श्रीनिवासजी ४-००
३२. Anthology of Vedic Hymns—स्वामी भूमानन्द सरस्वती ६०-००

कर्मकाण्ड-विषयक ग्रन्थ

३३. बौधायन-श्रौत-सूत्रम्—(दर्शपूर्णमास) ५०-००
३४. बौधायन-श्रौतसूत्रम् (संस्कृत)—आधान प्रकरण की व्याख्या एवं पद्धति सहित ५०-००
३५. दर्शपूर्णमास-पद्धति—पं० भीमसेन ३०-००
३६. कात्यायन-गृह्यसूत्रम्—(मूल) २५-००
३७. श्रौतपदार्थ-निर्वचनम्—(संस्कृत) ४०-००
३८. श्रौतयज्ञ-मीमांसा—(संस्कृत-हिन्दी) ३०-००
३९. अग्निहोत्र से लेकर अश्वमेधपर्यन्त श्रौतयज्ञों का संक्षिप्त परिचय— २०-००
४०. यजुर्वेद का स्वाध्याय तथा पशुयज्ञ समीक्षा—सजिल्द २०-००; बढ़िया जिल्द २५-००
४१. शतपथ ब्राह्मणस्थ अग्निचयन समीक्षा—पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय ४५-००

४२. संस्कार-विधि—१२-००, बढ़िया जिल्द १५-००
आर्य-समाज-शताब्दी संस्करण—विविध सूचियों सहित सजिल्द ४०-००
४३. संस्कारविधि-मण्डनम्—रामगोपाल १६-००
४४. वेदोक्त-संस्कार-प्रकाश—पं० बाला जी विट्ठल गावस्कर कृत मराठी का हिन्दी अनु० २५-००
४५. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—(पञ्च महायज्ञ के मन्त्रों की पदार्थ व भावार्थ व्याख्या) १२-००
४६. वैदिक-नित्यकर्म-विधि—(मूलमात्र) २-००
४७. पञ्चमहायज्ञविधि—ऋ० द० कृत ३-००
४८. सन्ध्योपासन-अग्निहोत्रविधि—(हिन्दी-अंग्रेजी व्याख्या सहित) डा० विजयपाल १२-००
४९. वैदिकयज्ञों का स्वरूप—डा० कृष्णलाल १०-००

शिक्षा-निरुक्त-व्याकरण-छन्दःशास्त्र-ज्योतिष विषयक ग्रन्थ

५०. वर्णोच्चारण-शिक्षा—ऋषि दयानन्द २-००
५१. शिक्षासूत्राणि—आपिशल-पाणिनीय-चान्द्र ८-००
५२. शिक्षा-शास्त्रम्—जगदीशाचार्य १५-००
५३. शिक्षा महाभाष्यम्— „ सजिल्द १५-००
५४. वर्द्धशिक्षा-शास्त्रम्— „ सजिल्द ३०-००
अरबी-शिक्षाशास्त्रम्— „ १५-००
५५. तुम्हारी वर्णमाला—(हिन्दी) „ ५-००
५६. निरुक्त-श्लोकवार्त्तिकम्—नीलकण्ठ १२५-००
५७. निरुक्त-समुच्चय—वररुचि कृत २०-००
५८. अष्टाध्यायीसूत्रपाठः—शुद्ध संस्करण ६-००
५९. अष्टाध्यायी-भाष्य—(संस्कृत तथा हिन्दी) भाग I ६०-००; II ४०-००; III ५०-००
६०. आगमवृत्तिसंकलनम्—अष्टाध्यायी-वृत्ति १०-००
६१. महाभाष्य—यु० मी० कृत हिन्दी व्याख्या सहित भाग I प्रथम खण्ड ६५-००, द्वितीय खण्ड ६०-०० [illegible] III ५५-००
६२. [illegible] जगदीशाचार्य ३०-००
[illegible] सम्पूर्ण २००-००
६३. धातुपाठः—([illegible] सहित) ५-००
६४ क्षीरतरङ्गिणी—([illegible] धातुपाठ-व्याख्या) ७०-००
६५. धातुप्रदीप—[illegible], मैत्रेयरक्षित ५०-००
६६. संस्कृत-धातु-कोष—यु० मी० २०-००
६७. काशकृत्स्न-व्याकरणम् २०-००
६८ काशकृत्स्न-धातुव्याख्यानम्— ४०-००
६९. संस्कृत पठन-पाठन की अनुभूत सरलतम विधि—भाग I ४५-००, II ४५-००
प्रथम भाग का अंग्रेजी अनुवाद ३०-००
७०. उणादिकोष—ऋ० द०। अ० २०-००, स० २५-००
७१. दशपाद्युणादिवृत्ति-संग्रह-प्रथम भाग (माणिक्यदेवविरचित अतिप्राचीन वृत्ति, अनेक परिशिष्टों के साथ) सं०—यु० मी०, चन्द्रदत्त शर्मा ४०-००; द्वितीय भाग में तीन प्राचीन वृत्तियों का संग्रह। सं०—चन्द्रदत्तशर्मा ५०-००
७२. गणरत्नावली—भट्टयज्ञेश्वर कृत पाणिनीय गणपाठ की व्याख्या। सं०—चन्द्रदत्तशर्मा ६५-००
७३. वामनीयं लङ्गानुशासनम्— १०-००
७४. दैवम् पुरुषकार-वार्त्तिकोपेतम्— १५-००
७५. अष्टाध्यायीशुक्लयजुःप्रातिशाख्ययोर्मतविमर्शः—डा० विजयपाल विद्यावारिधि ५०-००
७६. शब्दरूपावली—बिना रटे स्मरण योग्य ५-००
७७. यजुर्वेद-भाष्य-संग्रह तथा अपाणिनीय-पद-विमर्श—अजिल्द १२-००, सजिल्द १५-००
७८. पिङ्गलनागछन्दोविचिति-भाष्यम्—यादव-प्रकाशविरचित भाष्य ५०-००
७९. सूर्य-सिद्धान्त—उदयनारायण सिंह ६०-००

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान—
१. रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़, जिला—सोनीपत (हरयाणा)
२. रामलाल कपूर एण्ड संस पेपर मर्चेन्ट्स—
२५६६ नई सड़क, देहली | गुरु बाजार, अमृतसर | बिरहाना रोड, कानपुर